ISSN 2582-0133

साइकिल

बच्चों का दुमाहिया

वर्ष 7 अंक 5 दिसम्बर - जनवरी 2025



मूल्य ₹150

साइकिल

बच्चों का दुमहिया

वर्ष 7 अंक 5 दिसम्बर - जनवरी 2025

सम्पादन सुशील शुक्ल, शशि सबलोक

सहायक सम्पादक तज़ीन अली

उपसम्पादक दिव्या सिंह

डिज़ाइन तापोशी घोषाल

कवर एलन शॉ

वितरण अनीता शर्मा, सुनील भाटी

साल	कुल मूल्य (रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित)
1	1100 रुपए
2	2000 रुपए
3	3000 रुपए

एक प्रति 150 रुपए
(डाक खर्च अतिरिक्त)

भुगतान विवरण - बैंक ड्राफ्ट/चेक
इकतारा ट्रस्ट Ektara Trust के नाम नई दिल्ली में देय
ऑनलाइन ट्रांसफर - एच.डी.एफ.सी. बैंक,
बी-78 डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली
खाता नम्बर - 50100688089124, IFSC HDFC0000134 में भेजें।
ऑनलाइन खरीद की लिंक
https://www.ektarashop.in
भुगतान और वितरण की पूरी जानकारी
publication@ektaraindia.in पर दें।

EKTARA TRUST COLLECTION ACCOUNT
TID: 63087857

इस QR कोड को मोबाइल से स्कैन कर सभी UPI से भुगतान किया जा सकता है।
भुगतान के बाद सम्पर्क, पता, ऑर्डर और भुगतान की तमाम जानकारियाँ साझा करें।

इकतारा **तक्षशिला का बाल साहित्य एवं कला केन्द्र**
2, मालवीय नगर, भोपाल 462003
फोन 0755-4939472, 9109915118, 9630097118
ई-मेल cycle@ektaraindia.in
वेबसाइट www.ektaraindia.in

साल 2025 बहुत बहुत मुबारक हो



चित्रः तापोशी घोषाल









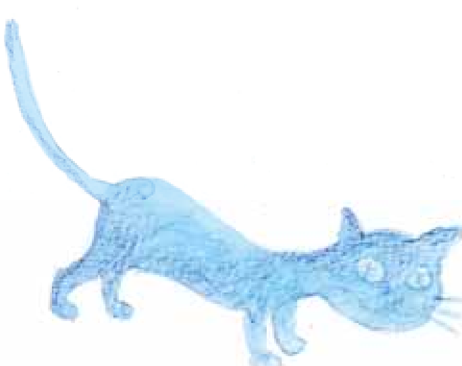
आकाश

उदयन वाजपेयी

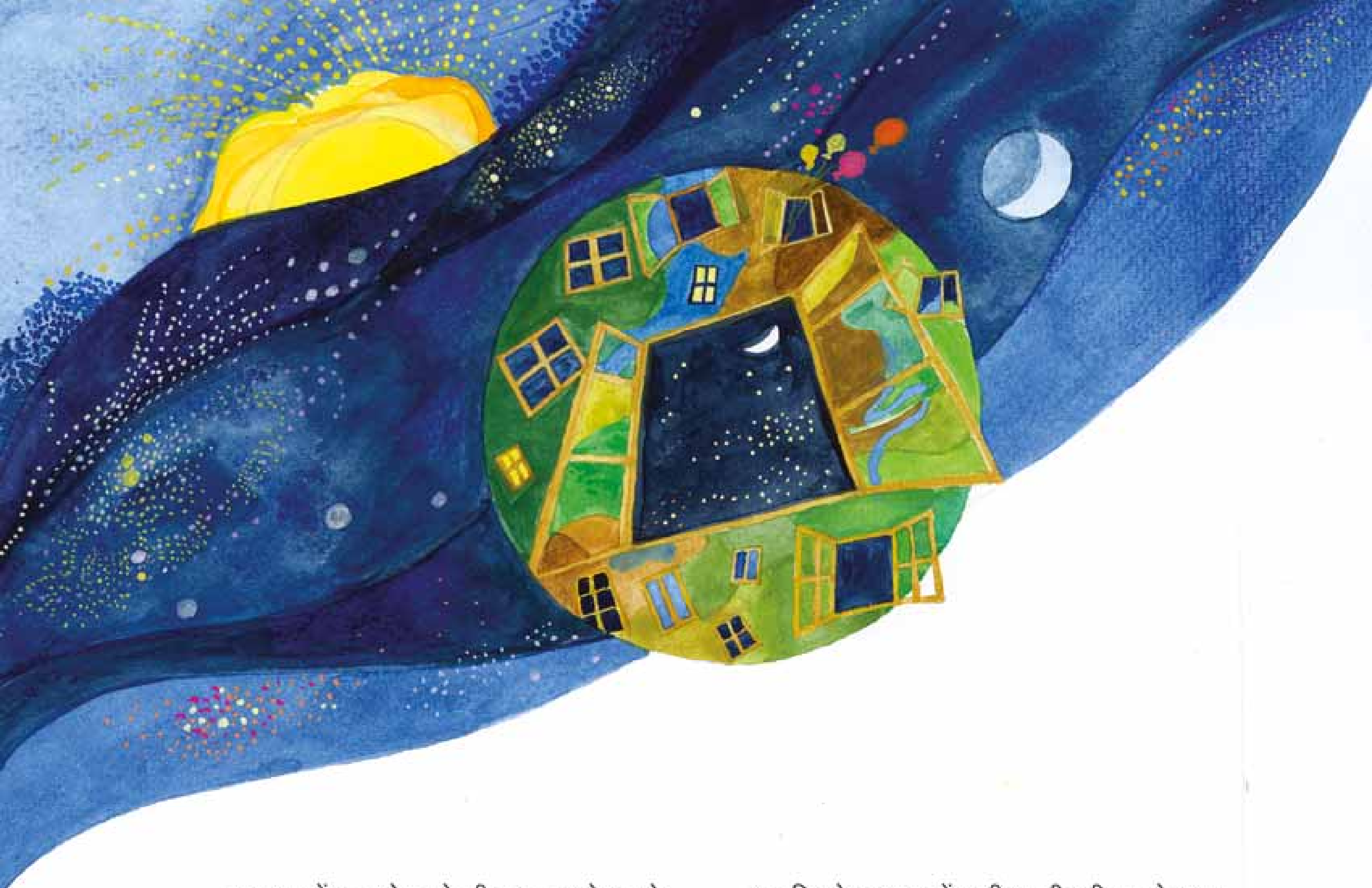
चित्रः तापोशी घोषाल

दिन में देखो तो आकाश में सिर्फ़ हलका नीला रंग है। रात में देखो तो गहरे नीले आकाश में हर तरफ़ तारे ही तारे हैं। केवल आँखों से देखो तो रात के गहरे नीले आकाश के तारे ठहरे हुए दिखते हैं। दूरबीन से देखो तो आकाश के तारे चल-फिर रहे हैं। आकाश को जैसे देखो वैसा हो जाता है। घर की खिड़की खोलो तो बाहर का आकाश कमरे के आकाश में आकर घुल-मिल जाता है। खिड़की बन्द करो तो बाहर का आकाश बाहर और भीतर का आकाश भीतर रह जाता है।

जब सुबह-सुबह हम घर का दरवाज़ा खोलते हैं, सबसे पहले बाहर का आकाश ही घर के भीतर आता है। वह अपने साथ बाहर की आवाज़ें भी ले आता है। आकाश के साथ-साथ बाहर की हवा भी भीतर आकर डोलने लगती है। हवा से लिपटी हुई बाहर के फूलों की सुगन्ध या कई बार बाहर का धुआँ भी कमरों के आकाश में फैल जाता है। जब पास के घर का भी दरवाज़ा खुल जाता है तब दोनों घरों के आकाश आपस में जुड़ जाते हैं। मानो वे एक-दूसरे में शामिल हो गये हों।







एक घर में बन रहे खाने की गन्ध, दूसरे घर के आकाश में फैल जाती है। दूसरे घर के खाने की गन्ध से खिंचकर गली का चितकबरा कुत्ता उसके पास चला आता है। उसके भौंकने की आवाज़ हवा पर सवार होकर घर के आकाश में बिखर जाती है। ठीक तभी अम्मा या पापा की आवाज़ घर के आकाश में काँपने लगती है: "ये कुत्ता क्यूँ भौंकता चला जा रहा है?" हम जब भी कोई चीज़, जैसे फ़्रिज या वॉशिंग मशीन घर के आकाश में लाते हैं, उस चीज़ के आकार का आकाश घर के बाहर चला जाता है।

हमारी यह पृथ्वी, हमारी यह सुन्दर-सी पृथ्वी, आकाश में तैरती हुई कहीं जा रही है। वह कहाँ जा रही है, कोई नहीं जानता। हम सब घर के आकाश में रहते हुए भी अन्तरिक्ष के आकाश की सैर कर रहे हैं। अन्तरिक्ष के आकाश में पृथ्वी अपनी धुरी पर गोल घूम रही है। वह गोल घूमते हुए सूर्य के आकाश में चक्कर काट रही है। सूर्य और उसके पृथ्वी, मंगल या बुध जैसे ग्रह आकाशगंगा का चक्कर लगा रहे हैं। आकाशगंगाएँ कभी एक-दूसरे के पास आती हैं, कभी एक-दूसरे से दूर जाती हैं। आकाश में जितने भी तारे हैं, घूम रहे हैं। अजूबा यह है कि आकाश में इतना सारा घूमते हुए कोई थकता नहीं है। इतनी सारी सैर करते न हम थकते हैं, न हमारा शहर, न हमारी नदियाँ, न हमारी पृथ्वी, न हमारा सूर्य और उसके ग्रह, और न आकाश में लगातार यहाँ से वहाँ भागते तारे। आकाश सबकी आँख बचाकर सबकी थकान को सोख लेता है जैसे मिट्टी पानी को।

पेड़ों का इंटरनेट

नेहा सिंह
चित्रः ऋषि साहनी

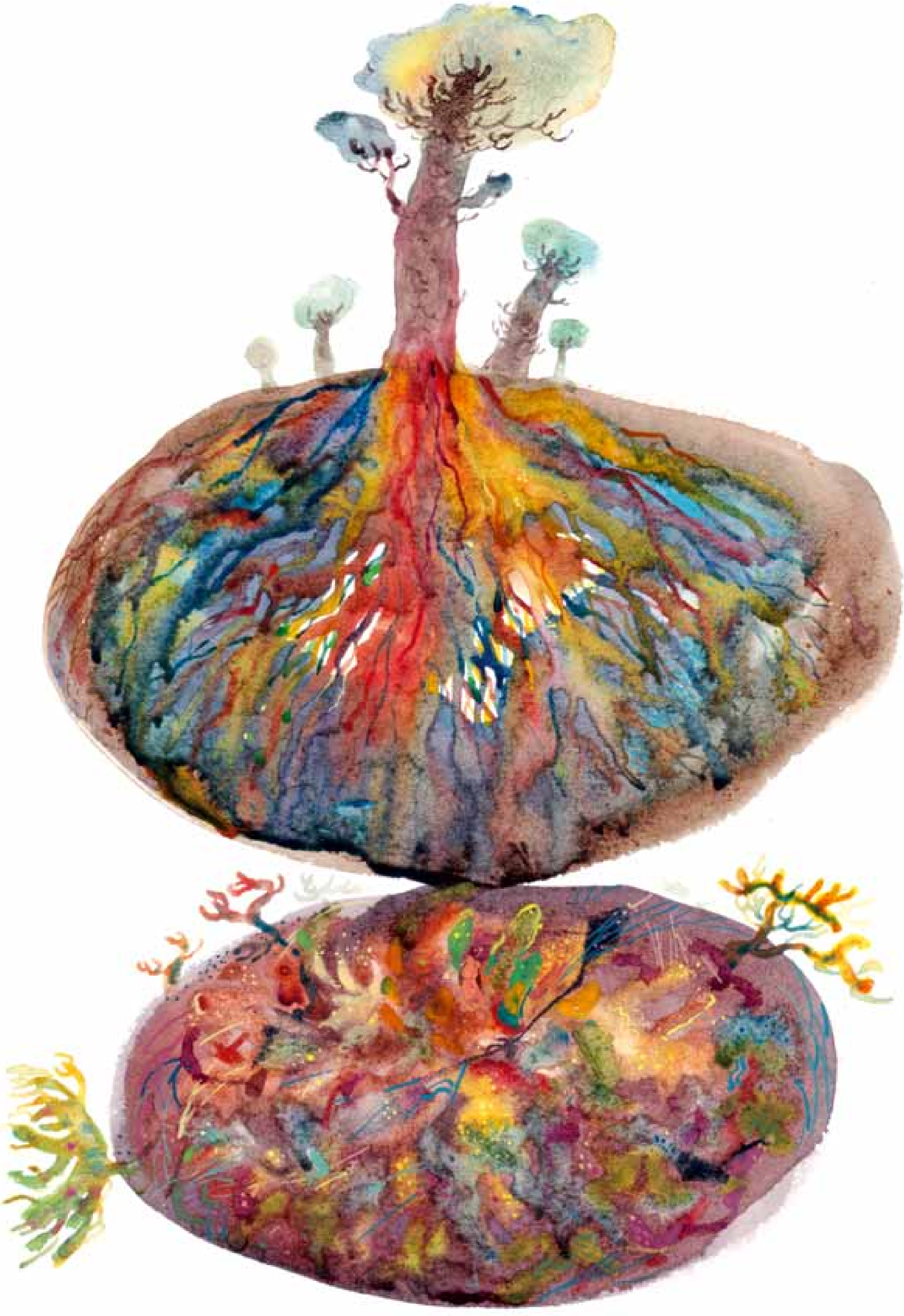


सूज़ैन का घर जंगल के पास था। वह ज़मीन पर लेटकर घने, विशाल पेड़ों के सिरों को ताकती रहती थी। उनमें से झिलमिलाते उजाले से आँख-मिचौली खेलती थी। उसके दादा देवदार के उन पेड़ों की कटाई का काम करते थे जो पश्चिमी कनाडा के जंगलों में उगते हैं। सूज़ैन को जंगल के बारे में उसके दादा ही बताते थे और यह बात भी कि वे लोग जंगल का हिस्सा हैं। एक बार जब दादा ज़मीन खोद रहे थे तब सूज़ैन ने देखा कि पेड़ ऊपर जितने बड़े होते हैं, ज़मीन के नीचे भी उतने ही फैले हुए होते हैं। उसे एहसास हुआ कि घरों की तरह जंगलों की भी नींव होती है।

जब वह बड़ी होने लगी तब सूज़ैन को जंगलों की कटाई से होने वाली बर्बादी दिखने लगी। लकड़ी का व्यापार करने वाले प्राकृतिक जंगल काटकर उसकी जगह ऐसे पेड़ लगा रहे थे जिनसे ज़्यादा लकड़ी मिल सके।

उसने पेड़-पौधों के बारे में पढ़ना शुरू कर दिया। उसी समय कुछ वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में यह जाना कि एक अंकुर अपनी जड़ों के रास्ते दूसरे अंकुर को कार्बन दे सकता है। जीवन का आधार ही कार्बन है। पेड़-पौधे हवा से कार्बन डाइऑक्साइड खींचते हैं और उससे कार्बोहाइड्रेट्स बनाते हैं। हमारा भोजन भी मुख्यतः कार्बन ही होता है। हमारा शरीर भी बड़ी मात्रा में कार्बन से ही बना है।

सूज़ैन को लगा कि अगर नन्हे अंकुर यह लेन-देन कर सकते हैं, तो बड़े पेड़ भी अपनी जड़ों से पोषक तत्व और दूसरी चीज़ें बाँटते होंगे। पर उसकी यूनिवर्सिटी में कोई भी उस पर विश्वास नहीं करता था। इस बात की पड़ताल और प्रयोग करने के लिए उसे साधन नहीं मिल रहे थे। पर्याप्त धन न होने के बावजूद उसने अपने प्रयोग जंगल के भीतर करने



शुरू किए। उसने वहाँ तीन प्रजाति के 80 पौधे लगाए। वहाँ एक भालू और उसका बच्चा बार-बार आते थे जिनकी वजह से सूज़ैन को वहाँ से भागना भी पड़ता था। पर एक प्रयोग काम कर गया।

उसने कोपलों को प्लास्टिक से ढँक दिया और भीतर ऐसी कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ दी जिसे वह अपने यंत्रों से नाप सकती थी। उसने पाया कि जो गैस एक ढँके हुए पौधे को ही मिल रही थी, वह जल्दी ही दूसरे पौधों में मिलने लगी। प्रयोगशाला में ही नहीं, जंगल में - अलग-अलग प्रजातियों के बीच! यही नहीं, उसने यह भी पाया कि जब एक पौधे में पत्तियाँ न हों और वह अपना भोजन न बना पाए तब उसे खाना-पीना दूसरे पौधों से मिल जाता था।

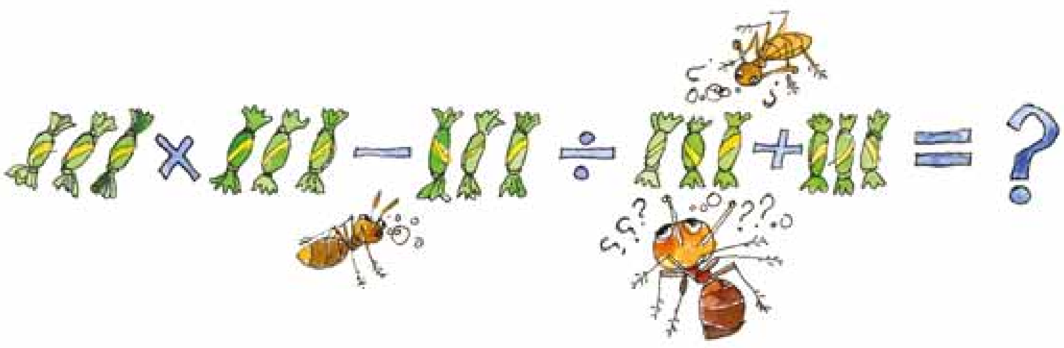
अपने प्रयोगों से सूज़ैन ने जाना कि यह लेन-देन केवल कार्बन का नहीं, बल्कि पानी, नाइट्रोजन, तरह-तरह के हॉरमोन जैसी हर उस चीज़ होता का है जिसकी ज़रूरत पेड़-पौधों को होती है। वे एक-दूसरे को अपनी ज़रूरत बताते रहते हैं और उसके अनुसार सहयोग भी करते हैं। बल्कि सभी वनस्पति एक तरह के इंटरनेट के ज़रिए हमेशा जुड़े रहते हैं, आपस में लगातार बात करते रहते हैं।

यह इंटरनेट फ़ंगस से बनता है। लगभग सभी पेड़-पौधों की जड़ों में फ़ंगस फैली रहती है। यह ज़मीन के नीचे रहती है इसलिए हमें दिखती नहीं है। बस, उसका ऊपरी हिस्सा दिखता है, जैसे मशरूम। पेड़ फ़ंगस को अपनी जड़ों से कुछ पोषण देते हैं। बदले में वह फ़ंगस मिट्टी में मौजूद खनिजों को ऐसा बना देते हैं कि उन्हें पेड़-पौधे जड़ों के रास्ते सोख लें।

इस नेटवर्क की गहराई इतनी है कि जहाँ आप खड़े हैं उसके नीचे ये तारें कई सौ किलोमीटर दूर तक फैली होती हैं। इनसे पेड़-पौधे कठिन बातें भी साझा कर लेते हैं। अगर कोई पेड़ कट रहा हो तो वह अपनी पीड़ा इसके ज़रिए दूसरे पेड़ों तक पहुँचाता है। वनस्पति संसार भी हमारी तरह सामाजिक होता है।

आज सूज़ैन सिमार्ड एक जानी-मानी वैज्ञानिक बन चुकी हैं। उनके शोध से हमें पेड़-पौधों और फ़ंगस के जादुई संसार को देखने-समझने का एक नया नज़रिया मिला है। आज यह सभी मानते हैं कि जंगल का मतलब केवल पेड़ नहीं होता। उसमें कई संसार बसते हैं। उनका अपना इंटरनेट है, मोबाइल फ़ोन है। उनकी अपनी पत्रिकाएँ भी होंगी और अपनी 'साइकिल' भी।

अगर दिलचस्पी हो तो सूज़ैन सिमार्ड को यहाँ सुन सकते होः https://www.ted.com/talks/suzanne_simard_how_trees_talk_to_each_other





चोर और साधु

धवले

चित्रः पंकज सैकिया

चार चोर चोरी करें वे घूमें सारी रात
रात गई हो गया सवेरा कुछ भी लगा न हाथ

हाथ मल मल कर पछताए
और काम नहीं आए क्यों न हम साधु बन जाएँ

चिमटा लेकर हाथ, रमा कर राख बैठ जाएँ
दे ही जाएँगे दान लोग जब नज़रें इधर घुमाएँ

नहीं इस धन्धे में घाटा
पिसा पिसाया हमें मिलेगा खाने को आटा

साधु बन गए चोर मिली नहीं उनको ठौर कमाने की
दुनिया बाबा कहती चीज़ें मिलती खाने की



एक पत्र

अमित दत्ता

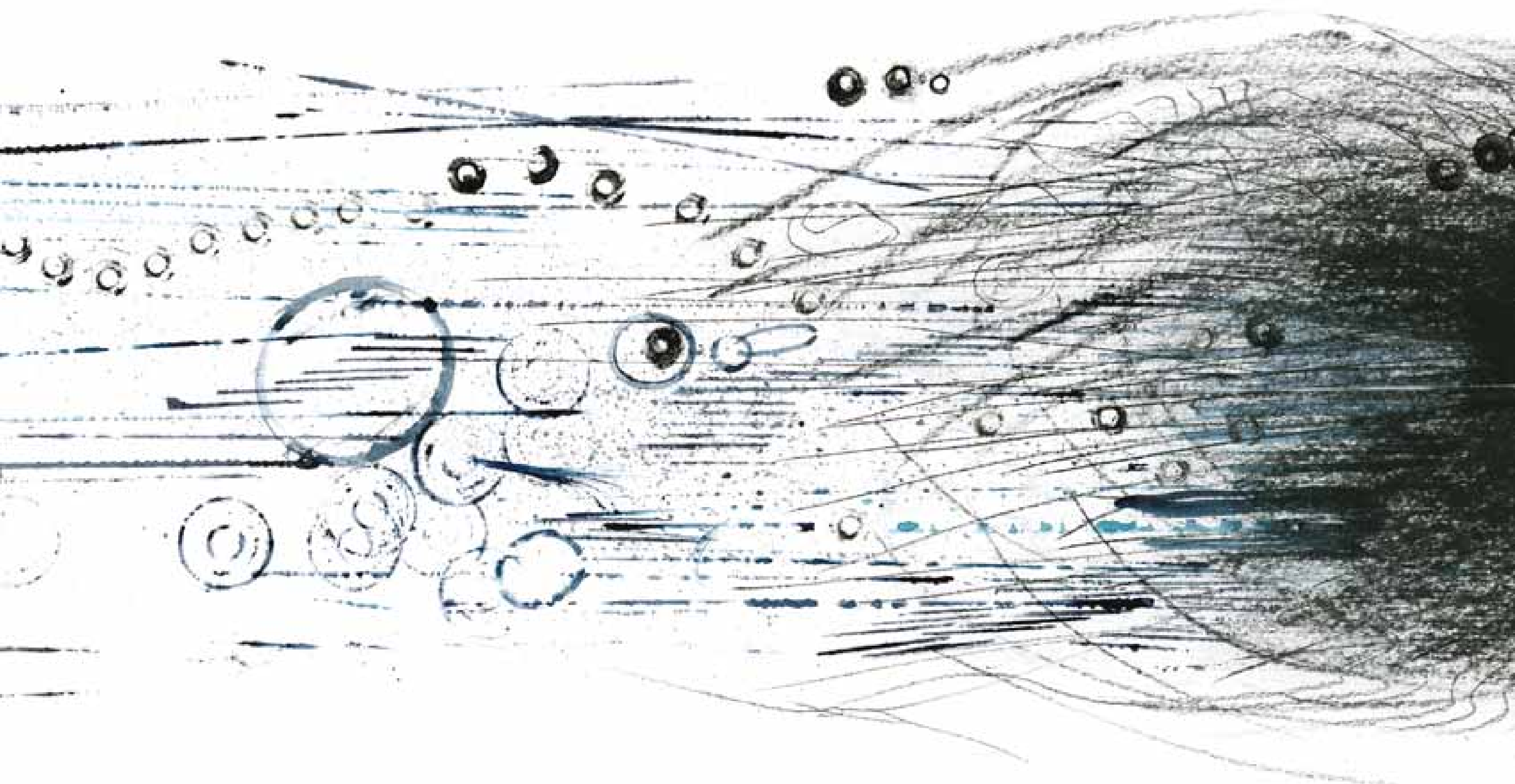
चित्रः तापोशी घोषाल

प्रिय पार्थ,

कितने दिनों बाद तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी जिज्ञासा व प्रश्नों से मुझे बेहद प्रसन्नता हुई है। इसलिए इस पत्र में मैं तुम्हें समझाने की कोशिश करूँगा कि मैं क्या काम करता हूँ (और कैसे करता हूँ)।

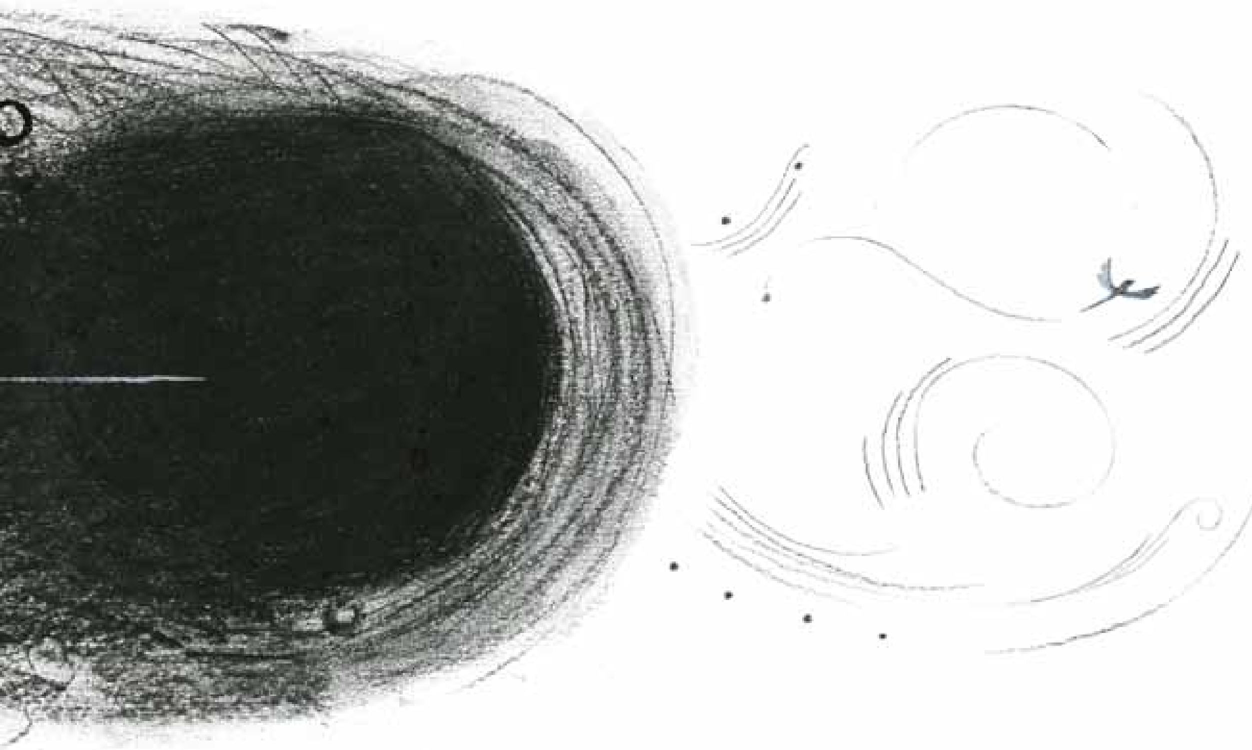
आजकल मैं एक फ़िल्म के बारे में सोच रहा हूँ जो महान गायक कुमार गन्धर्व के जीवन व संगीत पर आधारित है। कुमार गन्धर्व की आवाज़ में कुछ ख़ास था। जैसे मन की गुफा में गूँजती हुई आवाज़। लेकिन एक समय ऐसा भी आया जब उनकी आवाज़ मानो खो गई थी। वे बीमार हो गए थे, और उनकी आवाज़ अब पहले जैसी नहीं रही थी। उस समय को मैं एक 'मौन' की तरह सोचता हूँ। लेकिन उस मौन में भी वह ख़ूब मनन करते थे। जो कि एक तरह का ख़ास रियाज़ होता होगा। वह ऐसा एक सुर लगाते थे जिसे हम सुन नहीं सकते थे, पर वो वहाँ था। मैं इस मौन की कहानी को अपनी फ़िल्म में दिखाने की कोशिश कर रहा हूँ। लेकिन तुम सोचोगे कि फ़िल्म तो छवियों व ध्वनि का संगम है। उसमें हम मौन कैसे दिखा सकते हैं? क्या इससे फ़िल्म उबाऊ नहीं हो जाएगी?





तुम्हें शायद यह जानकर हैरानी होगी कि मौन से कहानी कहीं गहरी हो सकती है और दिलचस्प भी। ध्वनि और मौन के बीच एक ऐसा तनाव उत्पन्न हो सकता है जिसे दर्शक बहुत गहराई से अनुभव करता है। कैमरा एंगल, लैंडस्केप और पात्रों के हाव-भावों का इस्तेमाल करके भावनाओं को बिना सम्वाद के व्यक्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, किसी पात्र की आँखों में भरी हुई भावनाएँ या हाथों का हलका काँपना गहरे मौन को बयान कर सकते हैं। बिम्बों का उपयोग कर सकते हैं। जैसे वीरान जगहें, खाली सड़कें या ठहरी हुई वस्तुएँ, जो मौन का संकेत देती हैं। अचानक फ़िल्म के पार्श्व-संगीत का बन्द हो जाना और सिर्फ़ प्राकृतिक ध्वनियों का आ जाना (जैसे हवा, पत्तों की सरसराहट) एक गहरी ख़ामोशी का एहसास दिला सकता है। धीमे-धीमे बात करते हुए पात्रों के विचारों, संघर्षों और भावनाओं को सामने लाया जा सकता है। स्लो-मोशन का प्रयोग करके घटनाओं को लम्बा खींचा जा सकता है। उससे ख़ामोशी का प्रभाव और अधिक हो जाता है। कम रोशनी या छाया का उपयोग कर आप मौन को विज़ुअल रूप में व्यक्त कर सकते हैं। अँधेरा और हलकी रोशनी कभी-कभी शब्दों से ज़्यादा बोलती है। सम्वाद की बजाय पात्रों के बीच नज़रें मिलाना, हलका सिर झुकाना या उनकी धीमी चाल को देखकर दर्शक समझ सकते हैं कि कोई भावनात्मक क्षण बीत रहा है। भले ही वहाँ शब्द न हों।

मेरी इस फ़िल्म का मुख्य उद्देश्य यह दर्शाना है कि संगीत सिर्फ़ आवाज़ों का खेल नहीं है। बल्कि उन पलों की भी कहानी है जब सब कुछ शान्त हो जाता है। जैसे जब तुम अपने कमरे में अपने छोटे भाई के साथ बैठे हुए ज़ोर-ज़ोर से बात कर रहे हो। अचानक एक पक्षी फड़फड़ाता हुआ अन्दर आ जाता है। तब तुम ठिठककर उस पक्षी की ओर देखते होगे। तुम दोनों खुद को एक



अजीब मौन की अवस्था में पाओगे। इस फ़िल्म में भी मैं इसी प्रकार के मौन को पकड़ने की कोशिश कर रहा हूँ।

जब कुमार गन्धर्व की आवाज़ फिर से वापस आई, वह पहले से भी गहरी और मज़बूत हो गई थी। उन्होंने नए सुरों को खोजा जो शायद उस ख़ामोशी में छिपे हुए थे। मैं भी अपनी फ़िल्म में उस ख़ामोशी को ढूँढने की कोशिश कर रहा हूँ जो सुरों से भी ज़्यादा गहरी है।

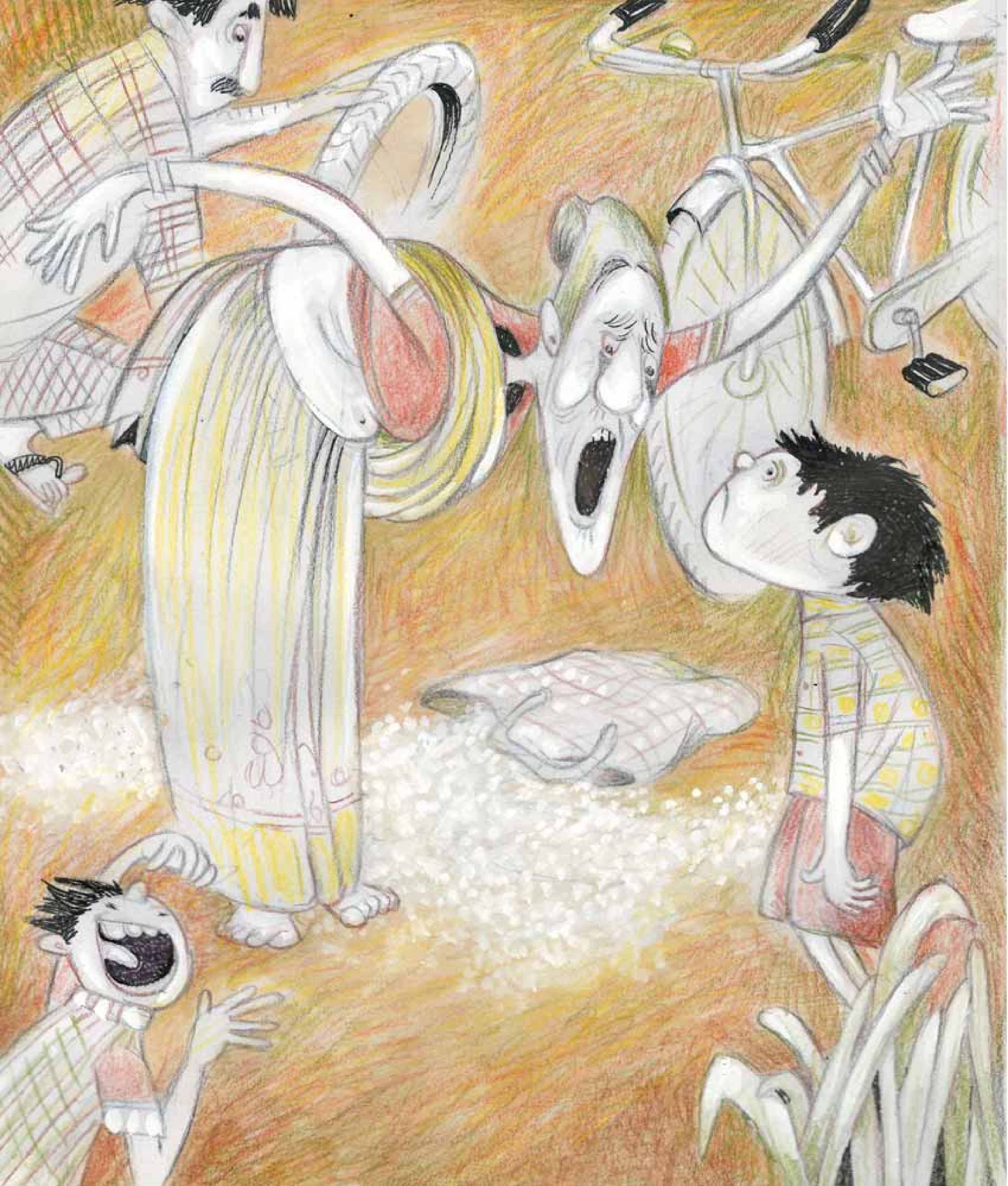
जब मैं फ़िल्म बनाता हूँ, मैं उन कहानियों को ढूँढता हूँ जो हम सीधे देख-सुन नहीं सकते। यह एक ऐसी यात्रा है जहाँ मैं अपने अन्दर झाँकने की कोशिश करता हूँ। चेतना की परतों तले दूर कहीं दबी बेहद सूक्ष्म अनुभूतियों से सम्पर्क करने की कोशिश। यह मुश्किल है पर बेहद दिलचस्प। उम्मीद है तुम्हें मेरी फ़िल्म बनाने की प्रक्रिया के बारे में कुछ समझ आया होगा।

और एक आख़िरी बात। तुम इस पर सोचना। जॉन केज नाम के एक प्रसिद्ध अमेरिकी संगीतकार और संगीतज्ञ ने कहा था, "मौन तो संगीत है, लेकिन संगीत मौन नहीं है।" तुम्हें क्या लगता है?

प्यार और आशीर्वाद,

मामा

(पत्र में जिस फ़िल्म का ज़िक्र है वो है - फूल का छन्द। मौक़ा लगे तो इसे ज़रूर देखना।)



वो कत्थई साइकिल

अमित कुमार
चित्रः प्रशान्त सोनी

मुझे साइकिल सीखने में महीनों लगे। जबकि मेरे बड़े भाई ने हमेशा सब कुछ जल्दी सीखा। उसने अपने दोस्त की साइकिल माँगकर चलाई। और छह-सात दिनों में ही सीट पर बैठकर चलाने लगा। फिर तमाम मिन्नतों के बाद पापा ने उसे नई साइकिल दिला दी।

एटलस की वह कत्थई रंग की साइकिल थी। पैडल मारते ही वो फ़र्राटे से दौड़ती। और हलका-सा ब्रेक दबाते ही रुक जाती। भाई तिकोनी गद्देदार सीट पर बैठता और मैं पीछे कैरियर पर। कैरियर के दोनों तरफ़ मेरी टाँगें लटकी होतीं और हाथ मज़बूती से सीट को पकड़े होते। दोनों के बस्ते पीठों पर टँगे होते। ज़रा-सी उचकन पर मेरी पकड़ और कस जाती। और बस्ते हमारी पीठों पर थपकियाँ देने लगते। हम दोनों भाई दो साल तक ऐसे ही स्कूल जाना-आना करते रहे।

हमारा स्कूल दसवीं तक का था। उसके बाद भाई का स्कूल बदलने वाला था। घर पर अब यही बातें चलतीं कि मैं स्कूल कैसे जाऊँगा। अन्त में तय पाया कि मुझे ही साइकिल सीखनी पड़ेगी।

अगले दिन से यह सिलसिला शुरू हो गया। हम आमबाड़ी मैदान में साइकिल लेकर जाते। भाई पीछे बैठता और मुझे साइकिल की कमान सौंप देता। मुझे साइकिल गणित के किसी पेचीदा सवाल-सी लगती। मेरे पैर पैडल तक और हाथ हैण्डल तक आते तो थे पर साइकिल मुझसे सीधी चलती ही नहीं थी। कभी दाएँ ढुलक जाती, कभी बाएँ। वो तो भला हो भाई की मज़बूत टाँगों का जो सड़क पर रगड़कर साइकिल रोक देतीं। और हम ढुकने से बच जाते।

एकाध महीने में एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर मैंने साइकिल सीधी चलानी सीख ली। पर अब भी मैं साइकिल सीधे बैठकर नहीं चला पाता था। पहले साइकिल स्टैण्ड पर खड़ी करता। स्टैण्ड का लॉक लगाता। फिर उचककर सीट पर बैठता। हैण्डल पकड़ता। और बाएँ पैर से स्टैण्ड को पीछे ठेल देता। जब पीछे का पहिया हलका-सा घूम जाता तो पैडल मारने लगता। साइकिल सड़क पर दौड़ने लगती। पर मेरे भीतर धड़घड़ बराबर बनी रहती। मैं कामचलाऊ साइकिल चालक बन गया था। साइकिल मोड़ने की दिक़्क़त अभी भी बनी हुई थी।

एक शाम मैं और मेरा दोस्त पीयूष खेलने जा रहे थे। उसे साइकिल चलानी आती थी। फिर भी उसे पीछे बैठाकर मैं साइकिल चला रहा था। मैं जहाँ चाह रहा था साइकिल वहीं चल रही थी। मुड़ रही थी। यहाँ तक कि रेलवे फाटक को भी मैंने सलीक़े से पार कर लिया था। ऊपर से "अब मैं किसी और का भी भार साइकिल से उठा सकता हूँ," सोच-सोच कर खुश हो रहा था।

हम दोनों मस्ताते हुए हनुमान मन्दिर से आगे बढ़ रहे थे। तभी एक बड़ा ट्रक सामने से आता दिखा। सड़क इतनी चौड़ी नहीं थी कि ट्रक बाईं तरफ़ चल सके। वो सड़क के बीचोंबीच तेज़ी-से मेरी तरफ़ बढ़ा आ रहा था। मेरे हाथ-पाँव फूल गए। बचाव का कोई सबक़ याद नहीं आया। घबराहट में मैंने साइकिल कच्चे रस्ते पर उतार दी। साइकिल का सन्तुलन डिग चुका था। वह बेलाग बाईं ओर घुसी जा रही थी। पीयूष "रुको! रुको!" चिल्ला रहा था। पर बात किसी के कहने-सुनने से परे जा चुकी थी।

सड़क किनारे एक बूढ़ी औरत दाहिने हाथ में थैला लिए चल रही थी। किसी हादसे की आशंका से बचने के लिए मैंने ज़ोर से ब्रेक दबाया। साइकिल उनके पाँव को छूती हुई थैले से जा लगी। थैला धम्म-से ज़मीन पर बजर गया और बाजरे का आटा बिखरकर मिट्टी में मिल गया।

वह मुझ पर टूट पड़ी, "नहीं आता है चलाने तो काहे मेन रोड पर साइकिल रौंद रहा है? मेरा आटा गिरा दिया। मेरे घर में अब रोटी कैसे पकेगा?"

मैं पसीनो-पसीन हो रहा था। पीयूष को जाने क्यों यह सब फ़नी लग रहा था। उसकी हँसी रुक नहीं रही थी। उसे चमाट लगाने के ख़्याल पर मैंने किसी तरह क़ाबू पाया।

मैं "सॉरी दादी, सॉरी" बोले जा रहा था। पर उन्होंने कहा, "तुम्हारा सॉरी से मेरा रोटी पकेगा? पैसा भरो, पैसा।"

उस वक़्त न मैं यह हिसाब लगा पाया कि मैंने कितना आटा गिराया है। और न ये कि आटे का भाव क्या है। मेरी जेब में गोलगप्पे खाने के दस रुपए थे। मैंने उसे बढ़ाते हुए कहा, "इतना ही है मेरे पास। आप ले लो।"

"इतना में क्या होगा? पचास रुपए का आटा गिराए हो और दस का नोट पकड़ा रहे हो।" उनकी आँखें लाल थीं। ट्रैफ़िक सिग्नल-सी।

मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम हो चुकी थी। अचानक याद आया कि गर्मी की छुट्टी में नानी से मिले बीस रुपए मैंने नटराज के इंस्ट्रूमेंट बॉक्स में रखे हैं। पर फिर भी वह कम पड़ते। पर दस से तो बेहतर होते।

"मैं घर से कुछ और रुपए ला सकता हूँ।" मेरी आवाज़ काँप रही थी।

"तुमको घर जाने देंगे तो भाग नहीं जाओगे!" कहते हुए उन्होंने मेरी साइकिल का हैण्डल पकड़ लिया।

सड़क किनारे एक मकैनिक यह सब देख रहा था। वह सड़क पार कर आया। पूरा मामला सुनने के बाद उसने उस औरत से कहा, "इसका घर दूर है। बिना साइकिल पैसा कैसे लाएगा?"

"और भाग गया तो?" बूढ़ी ने कहा।

मकैनिक ने एक तरकीब सुझाई, "इसे जाने दो। इसका दोस्त यहीं रहेगा। ये इसे वापस लेने आएगा और पैसे भी लेता आएगा।" बूढ़ी राज़ी हो गई। मकैनिक ने जाते हुए मुझे आँख मारी।

मैंने साइकिल मोड़ ली। और ताबड़-तोड़ पैडल मारने लगा। मुझे जल्दी-से घर पहुँचना था। पर

दूसरी दुर्घटना भी नहीं करनी थी। क़रीब दस मिनट में मैं घर के दरवाज़े पर हाँफ रहा था।

मुझे बेहाल देख भाई ने पूछा। और मैंने पूरी रामकथा उसे सुना दी। भाई ने कहा, "बैठो और पानी पीयो।"

"यह पानी पीने का समय है भला?" मैंने सोचा और पैसे लेने कमरे में चला गया। निकलने को हुआ तो भाई ने कहा, "तुम फ़ुज़ूल परेशान हो रहे हो। पीयूष को वो आने देंगी। पकड़ कर थोड़े रखेंगी। बैठ जाओ। मकैनिक ने तुम्हें इसी बात का इशारा किया था।"

मेरा मन नहीं मान रहा था। पर भैया ने कहा, "तुम दस मिनट रुक जाओ। पीयूष न आए तो चले जाना।" किसी तरह मैंने खुद को मनाया। चालीस रुपए तो यूँ भी मेरे पास नहीं थे।

थोड़ा ही समय बीता था कि पीयूष ने दस्तक दी। "आए क्यों नहीं तुम?" उसने कहा।

"थोड़ी देर इन्तज़ार कर रहा था कि तुम ही आ जाओ। मेरे पास उतने पैसे भी नहीं थे। वैसे कैसे आने दिया तुम्हें उन्होंने?"

"मकैनिक अंकल ने छुड़वा दिया। कहा कि कितनी देर पकड़े रहोगी, अम्मा। बच्चा है, जाने दो। मैंने भी अपने दस रुपए उन्हें दे दिए। दादी बड़बड़ाती हुई चली गईं और मैं यहाँ आ गया।" इतना कह पाँव पटकते हुए वह अपने घर की तरफ़ जाने लगा। मैंने उसे रोककर उसकी मुट्ठी में दस रुपए थमा दिए।

उस रात मुझे नींद देर से आई। बाद में अपने कस्बे में मैं जब भी साइकिल घुमाता और किसी बूढ़ी को देखता तो लगता ये वही तो नहीं। पर पाता कि ये तो कोई और है।

अब भी वो माफ़ी उनके पास है जो मैं उनसे माँगना चाहता हूँ।



चित्रः तापोशी घोषाल

एक चोर दुकान से सौ रुपए चुराता है। और उसी नोट से 70 रुपए का सामान लेता है। दुकानदार उसे 30 रुपए वापस करता है। दुकानदार को कितने का घाटा हुआ?

सरौते का क़िस्सा



शान मोहम्मद
चित्रः राजीव आइप

अमूमन घर पे सब जल्दी उठ जाते हैं। पर रात आँधी और बूँदा-बाँदी के चक्कर में सबकी खटिया आँगन से उठाकर दालान में पटक दी गई थीं। मुझे बस छींटे और तेज़ हवा याद हैं जिसके मारे मुझे दालान की दौड़ लगानी पड़ी। सुबह अम्मी की आवाज़ से नींद थोड़ी देर से टूटी। मैंने मिचकाते हुए आँख खोलीं तो छज्जे के नीचे एक बोरी पड़ी दिखी। मैंने दादी से इशारे में पूछा, "अम्मा, क्या है इसमें?"

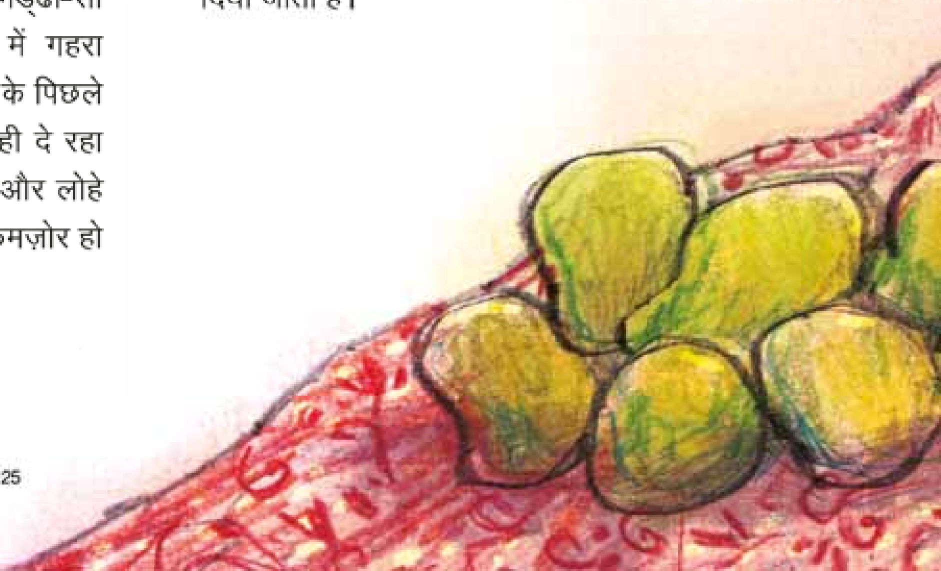
"अमियाँ हईं। अब्बा बीन लाये तुमारे, घर के पेड़ मसे। आँधी में गिरी गईं थीं," झाड़ू की तीलियाँ अपनी हथेली से ठोंकते हुए अम्मा अवधी-कन्नौजी में बोलीं। और फिर मुझे फुफ्फी के घर से अमियाँ काटने वाला सरौता लाने की ज़िम्मेदारी भी दे डालीं। मैंने वजह पूछी तो बताया गया अचार रखा जाएगा।

फिर क्या, फुफ्फी के घर से सरौता लाया गया। एकदम क़दीमी-सा। बुज़ुर्गी तारी हो रखी थी उसपे। उसके धार वाले लोहे में घिस-घिसाहत से गड्ढा-सा बन गया था। और नीचे लगी लकड़ी में गहरा तिकोनेदार निशान था। यह धार वाले लोहे के पिछले हिस्से से खाई चोटों और ज़ख्मों की गवाही दे रहा था। और वो पिन-नुमा कुण्डी, जो लकड़ी और लोहे को अपने कब्ज़े में किए हुए थी, टेढ़ी और कमज़ोर हो रखी थी।

अमियावाले सरौते की मिल्कियत किसी एक की होती है लेकिन इस्तेमाल पूरे मोहल्ले और रिश्तेदारी में होता है। इससे बेचारा सरौता भी क्या करे? उसपे वक़्ती कमज़ोरी, घिसाव-पिटाव, टूटा-फूटी तो वाज़िब बनती है।

ख़ैर। अमियों के हलाल होने और सरौते के इम्तेहान की घड़ी आ गई थी। अम्मा ने सरौते को ग़ुस्ल देने के साथ-साथ अमियों को भी अच्छे से नहला-धुलाकर पोंछ-पाँछ दिया था। ताकि अचार तक साफ़-सुथराई पहुँचाई जा सके।

अब अम्मा ने एक पुराने कपड़े की कत्तल को दो-तीन तहों में लपेट कर सरौते और उसकी लकड़ी के दरम्यान रख दिया जिससे काटते वक़्त अमियाँ फूटें ना। वरना अमियाँ सूखी खटाई बनने तक ही महदूद रह जातीं। अचार के ख़राब होने के ख़ौफ़ से फूटी अमियों का नाम वैसे भी अचार की फ़ेहरिस्त से काट दिया जाता है।





अम्मा ने एक अमिया को सरौते की धार के बीचोंबीच रखा और अपनी हथेली से सरौते के हत्थे पर ज़ोर मारा। धार वाला लोहा अमिया की पीठ पर गिरा पर अमिया नहीं कटी।

अम्मा ने अमिया को घुमा कर फिर से रखा। और फिर से सरौते के हत्थे पर कसकर ज़ोर मारा। अमिया ने जुम्बिश न खानी थी, न खाई। लगता हई मोटी जाली परि गई। अम्मा ने बुदबुदाते हुए वजाहत पेश करी।

इस बार अम्मा ने बिना अमिया को इधर-उधर किए सरौते के हत्थे को अच्छे ज़ोर से मारा। ज़ोर वाक़ई अच्छा था। इस बार चार आवाज़ें एक साथ सुनाई पड़ीं। एक थी अम्मा की आवाज़, सरौते के हत्थे पे पड़ी हथेली की आवाज़, अमिया के दो टुकड़ों में कटने की आवाज़ और सरौते के टूटने की आवाज़।

अमिया का क़त्ल-ए-आम हो रखा था। सरौते ने दम तोड़ दिया था। बेचारा अचार बनते-बनते रह गया था।

आना, जाना और बनाना

चित्रः तापोशी घोषाल

दुनिया में सबसे पहले केले पूर्वी एशिया के कुछ इलाकों में हुए। वहाँ से अफ़्रीका होते हुए धीरे-धीरे दुनिया के बाक़ी हिस्सों तक पहुँचे। कहते हैं कि पश्चिमी अफ़्रीका की किसी भाषा में केले को बनाना कहा जाता था। कुछ सदियों बाद यूरोप के स्पेन और पुर्तगाल सरीखे देशों का समन्दर के रस्ते वहाँ आना-जाना शुरू हो गया। सामान के साथ भाषाओं में भी लेन-देन होने लगा। थोड़े समय की ही बात थी कि 'बनाना' अंग्रेज़ी में शामिल हो गया। यह भी कहते हैं कि अरबी में बनाना शब्द का मतलब उँगली होता है। शायद इसलिए अंग्रेज़ी में एक केले को फ़िंगर और केले के गुच्छे को हैण्ड कहते हैं।



पंजाबी कविता

टिड्डा

चेतना जठोल

चित्रः प्रिया कुरियन

हरे रंग दा टिड्डा
वेखे मैन्नू सिद्दा
हथ जोड़े एद्दाँ
करे इबादत जिद्दाँ
मैं वी ओन्नू पुछ्या
होर पाई किद्दाँ



राफ़ा

सोपान जोशी
चित्रः एलन शॉ



एक द्वीप है मायोरका। स्पेन के पूर्वी तट से कोई सवा-दो-सौ किलोमीटर दूर। भूमध्यसागर में। यहाँ जीवन धीमी गति से चलता है। कोई भागा-दौड़ी नहीं रहती। लोग आपस में मिलते-जुलते रहते हैं।

इस द्वीप में एक गाँव है मानाकोर। यहाँ के लोग फ़ुटबॉल प्रेमी हैं। जाने-माने पेशेवर फ़ुटबॉलर मैनुएल नडाल मानाकोर के स्पोर्ट्स क्लब में आते-जाते थे। वे स्पेन की राष्ट्रीय टीम में खेल चुके थे। उनके मँझले भाई टोनी नडाल लॉन टेनिस के खिलाड़ी रहे थे। वे क्लब में बच्चों को टेनिस सिखाने लगे।

1989 की बात है। कोर्ट पर टोनी के बड़े भाई का तीन वर्षीय बेटा राफ़एल आया। घर में सब उसे राफ़ा कहते थे। टोनी को बाक़ी बच्चों और राफ़ा में एक फ़र्क़ दिखा। जब टोनी सर्व या रिटर्न करते, तब दूसरे बच्चे गेंद के पास आने का इन्तज़ार करते और फिर शॉट खेलते। पर राफ़ा गेंद के आने का इन्तज़ार नहीं करता रहता। हर शॉट के लिए वह खुद गेंद के पास दौड़ता। टोनी ने यह बात उसके माता-पिता को बताई। अब राफ़ा फ़ुटबॉल के साथ टेनिस भी खेलने लगा था।

राफ़ा भरपूर लाड़-प्यार में पल रहा था। दादा-दादी, दो चाचा, एक बुआ, माता-पिता, सगे-सम्बन्धी, सभी का लाड़ला था। वो ज़रा डरपोक था और मुश्किलों से बचता था। टेनिस कोर्ट में टोनी नडाल

का सारा लाड़ काफ़ूर हो जाता था। वे राफ़ा के साथ वहाँ बेहद सख़्त रहते थे। वे उसे मज़बूत बनाना चाहते थे।

कई बार राफ़ा की माँ देखतीं कि बेटा रोता हुआ घर आया है। पर राफ़ा ने कभी टोनी की शिकायत नहीं की। शायद उसे अहसास था कि सीखना इसी रस्ते होता है। टोनी उसका ध्यान परखने और पक्का करने के लिए उसकी ओर गेंद फेंक देते। या उस पर चिल्लाने लगते। राफ़ा टेनिस के अभ्यास में लगा रहता। अब उसे टेनिस खिलाड़ी ही बनना था। और उसे पता था कि टोनी नडाल से बेहतर प्रशिक्षक उसे नहीं मिलेगा।

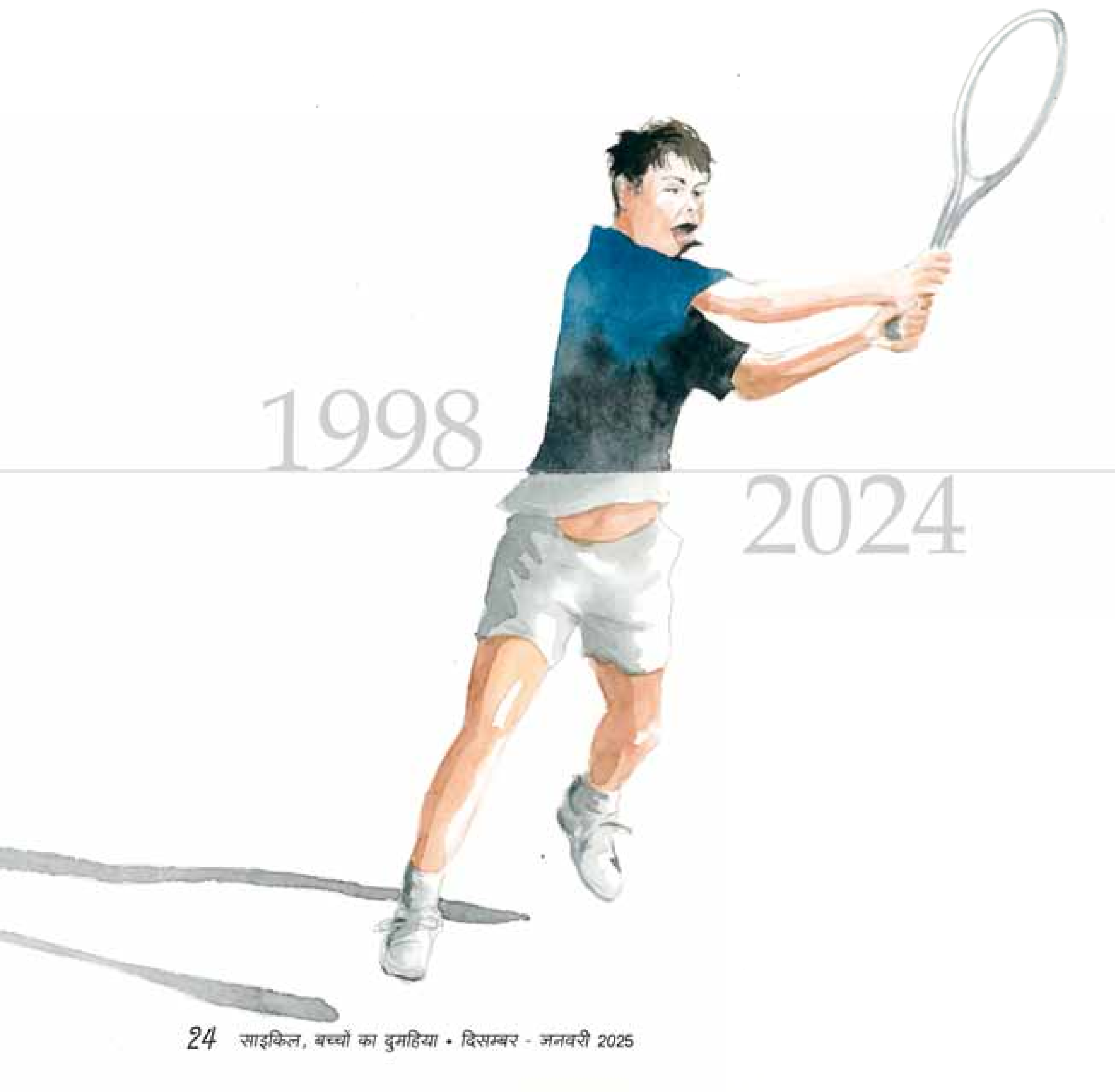
कुछ साल खेलने के बाद राफ़ा अपने से बड़ी उम्र के खिलाड़ियों को हराकर जीतने लगा था। बारह साल की उम्र में राफ़ा ने स्पेन के राष्ट्रीय अंडर-14 टेनिस प्रतियोगिता में भाग लिया। पहले मैच में ही वो



गिर गया और उसके बाएँ हाथ की छोटी उँगली टूट गई। पर राफ़ा खेलता रहा। वो फाइनल तक पहुँचा और उस प्रतियोगिता का विजेता रहा। तब उसे अपनी उँगली में होते दर्द का ख़्याल आया। दर्द इतना था कि वह अपनी ट्रॉफ़ी तक उठा नहीं पाया।

चौदह साल की उम्र में राफ़ा पेशेवर खिलाड़ी बन गया था। हरेक रैली (किसी पॉइंट के लिए जब चार या उससे अधिक शॉट्स खेले जाएँ), हरेक पॉइंट पर अपनी सारी जान लगाने वाला खिलाड़ी किसी ने देखा नहीं था।

जब राफ़ा 2003 में टेनिस में ऊँचा उठने लगा तब रॉजर फ़ेडरर का ऐसा दबदबा था जैसा आज तक किसी का नहीं रहा। कई लोग उन्हें आज तक का सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी मानते हैं। राफ़ा और रॉजर के मुक़ाबलों में एक तरफ़ फ़ेडरर की सहजता दिखती, दूसरी तरफ़ नडाल का जुझारुपन। फ़ेडरर और



नडाल, और फिर कुछ सालों बाद नोवाक जोकोविच के मुक़ाबलों ने टेनिस से कितने ही लोगों को जोड़ा।

टोनी नडाल की देखरेख में राफ़ा ने सोलह ग्रैंड स्लैम ख़िताब जीते। उसके बाद भूतपूर्व टेनिस खिलाड़ी कार्लोस मोया के साथ छह और। टेनिस के महानतम खिलाड़ियों में अपना नाम दर्ज किया। यह वही डरपोक लड़का था जो एक समय ज़रा-सी कड़ाई पर रोने लगता था। ये सभी बातें राफ़ा की आत्मकथा 'मि इस्तोरिया' (अंग्रेज़ी में 'माई स्टोरी') में दर्ज हैं।

पैंतीस साल से राफ़ा गेंद-रूपी चुम्बक के पीछे अपने फ़ौलादी लोहे के साथ दौड़ता रहा है। पेशेवर टेनिस में दो दशक तक चमकने के बाद 38 की उम्र में राफ़ा ने बीते महीने सन्यास ले लिया। घूम-घूम के सारी दुनिया जीतने के बाद अब वह अपने अलसाए हुए गाँव मानाकोर लौट रहा है। खेल-कूद की उठा-पटक से दूर, अपने परिवार के साथ आनन्द और प्यार भरी ज़िन्दगी जीने के लिए। सुकून के अपन द्वीप पर।



चित्रः ऋषि साहनी



19 नवम्बर 2024

राफ़ा के आख़िरी टेनिस मुक़ाबले के पहले उनके सबसे अज़ीज़ प्रतिद्वन्द्वी और दोस्त रॉजर फ़ेडरर ने उनके नाम एक ख़त लिखा। पेश है उसका सम्पादित अंश।

चन्द दिनों में तुम अपना आख़िरी टेनिस मैच खेलने वाले हो। इससे पहले कि मैं भावुक हो जाऊँ, कुछ बातें कहना चाहता हूँ।

सबसे जानी-मानी बात से शुरू करता हूँ - यार, तुमने मुझे बहुत हराया। मैं तुमको जैसे-तैसे, कुछ ही बार हरा सका। मेरे लिए टेनिस में तुम सबसे बड़ी चुनौती रहे। और तुमको क्ले पर खेलने की बात तो रहने ही देते हैं। बड़ा ही मुश्किल काम था वो। लगभग नामुमकिन। पर तुम्हारी वजह से मैंने अपने गेम के कितने ही पहलुओं को बदला। यहाँ तक की अपने रैकेट के साइज़ को भी, इस उम्मीद में कि उससे मुझे कुछ तो फ़ायदा मिले।

लेकिन राफ़ा, टेनिस में जो मैं और रमा, वो तुम्हारी ही बदौलत है।

बीसेक साल पहले हमने पहली बार एक-दूसरे का सामना किया था। हमने तब शुरुआत ही की थी। और उसके बाद से हम साथ ही उस रास्ते पर चले। राफ़ा, तुम वाक़ई कमाल हो। 14 फ्रेंच ओपन ख़िताब! तुमने स्पेन को, और सारे टेनिस जगत को गर्व महसूस कराया है।

तुम दुनिया के हर टेनिस खेलनेवाले बच्चे के रोलमॉडल हो। हमारे चार बच्चों के भी। उन्होंने तुमसे बहुत सीखा है। अब भी सीख रहे हैं। कभी-कभी तो मुझे लगता है कि कहीं वो भी तुम्हारी तरह बाएँ हाथ से खेलने न लग जाएँ!

राफ़ा, अभी तुम अपने आख़िरी मुक़ाबलों के लिए तैयारी कर रहे होगे। हम उसके बाद बात करेंगे। पर फ़िलहाल, तुम्हारे परिवार और टीम को बहुत मुबारकबाद। तुम्हारी कामयाबी में उनका बहुत, बहुत बड़ा हाथ रहा है।

याद रखना कि तुम्हारा दोस्त तुम्हारे लिए हमेशा चीयर करता है। तुम आगे जो भी करोगे, उसके लिए भी चीयर्स!

तुम्हारा फ़ैन, हमेशा

रॉजर फ़ेडरर

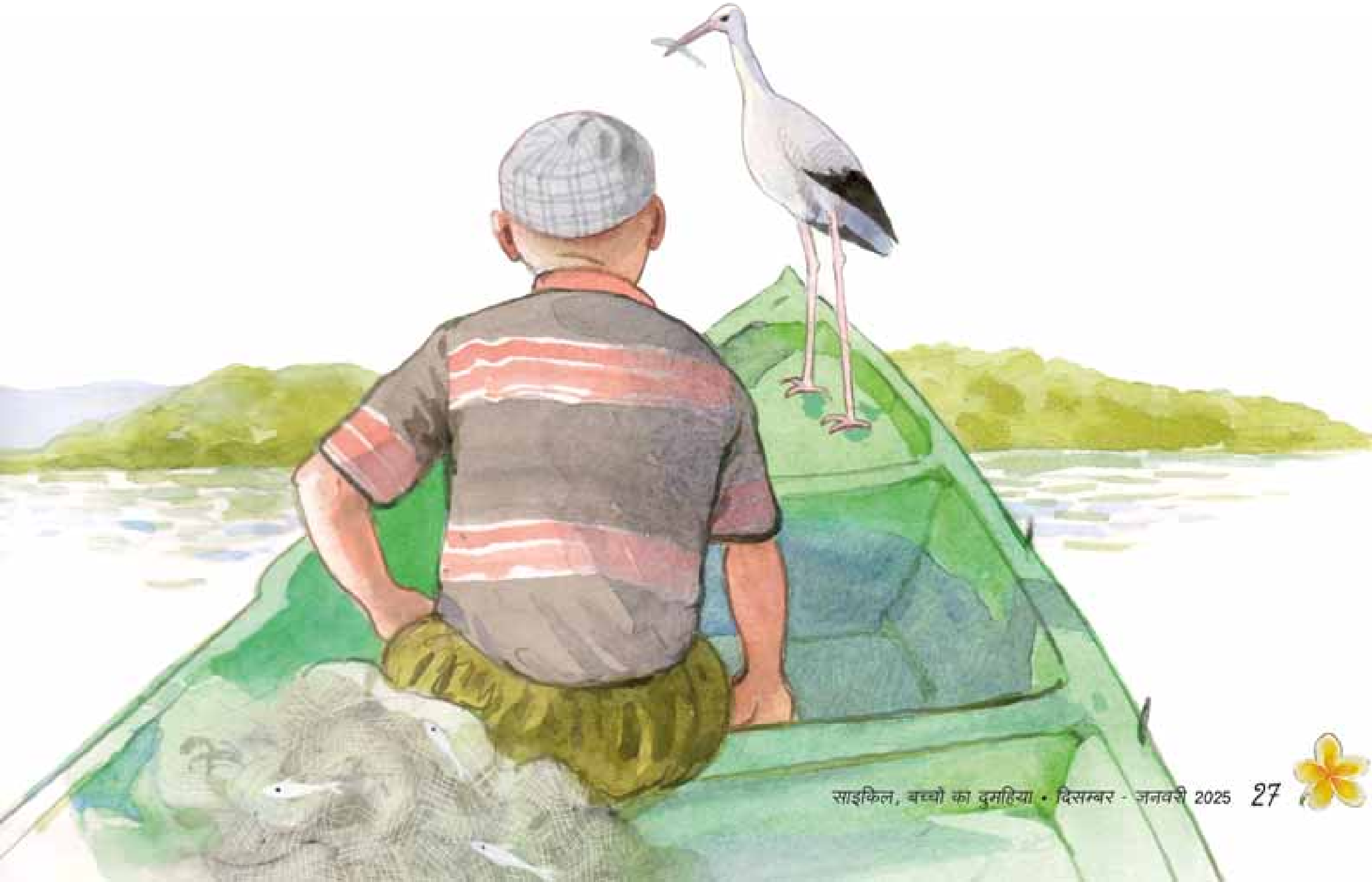
(फ़ेडरर के इंस्टाग्राम से साभार)

यारेन और इल्माज़

प्रस्तुतिः तज़ीन अली
चित्रः भार्गव कुलकर्णी

हर दिन की कोई ख़बर होती है। लेकिन कुछ ही ख़बरें याद रह जाती हैं। बीते दिनों की एक ख़बर मन में बसी रह गई। और उस ख़बर से जुड़े दो नाम भी : यारेन और इल्माज़।

इल्माज़ नाम के एक मछुआरे हैं जो तुर्की के एक गाँव एस्कीकर्सक में रहते हैं। तेरह साल पहले की बात है। एक दिन वे ताल पर अपनी नाव में थे। वे अपना जाल समेट ही रहे थे कि कोई उनकी नाव में आ बैठा। पलटे तो देखाः एक सफ़ेद स्टॉर्क। उन्होंने उसको एक मछली डाली, उसने खा ली। फिर एक और। फिर एक और। एक दिन डाली, दो दिन डाली...



वो दिन था और आज का दिन है। अब जब भी यारेन (वह स्टॉर्क) अपने प्रवास का वक़्त दक्षिण (जैसे कि अफ़्रीका) में बिताने के बाद लौटता है तो वो सबसे पहले इल्माज़ के पास, उनकी नाव में आता है। बैठता है। अब यारेन की एक साथी भी है, नाज़ली। दोनों ने अपना घोंसला उसी गाँव में बनाया हुआ है। उनकी देखादेखी कुछ और स्टॉर्क जोड़ों ने भी उसी गाँव में अपने घोंसले बनाए।



खिड़की



दिव्या सिंह
चित्रः प्रोइति रॉय

एक आदमी उम्रक़ैद की सज़ा काट रहा था। किस जुर्म के लिए, याद नहीं। उसने अपनी जेल की कोठरी में एक छैनी छिपा रखी थी। हर रात वो जेलख़ाने की दीवार में सुराख़ करता। एक दिन उसने वो औज़ार जेलर को लौटा दिए। जेलर ने उसकी कोठरी टटोली तो उसे एक छोटा, गोल-सा सुराख़ दिखा। वो इतना छोटा था कि उससे किसी भी तरह आना-जाना मुमकिन न था। उससे सिर्फ़ बाहर देखा जा सकता था। जेलर चला गया। क़ैदी वहीं रहा आया।

उस सुराख़ के बारे में सोचती हूँ तो खिड़की दिखने लगती है। फिर सोचती हूँ कि किसी दीवार में पहली खिड़की कैसे बनी होगी। कि किसी समय किसी मन को दीवार में एक खिड़की की ज़रूरत महसूस हुई होगी। पर तब 'खिड़की' शब्द नहीं था। थोड़ी हवा, थोड़ी रोशनी और थोड़ी बारिश को रस्ता देने खिड़की बनी होगी। और खिड़की के खुलने भर से देखना खुल गया होगा।

दुनिया की तमाम भाषाओं में खिड़की एक दृश्य खोलती है। पर खिड़की का ख़्याल अपनी-अपनी तरह से खुलता है। हर शब्द अपने इतिहास और इच्छा को संजोकर बना है। इसका सुराग़ भाषाओं में खिड़की को मिले नाम से भी ज़ाहिर होता है।

जैसे अंग्रेज़ी में खिड़की को नाम मिला है - विण्डो। विण्डो नॉर्स नाम की भाषा के दो शब्दों के जोड़ से बना है -

विन्ड्र (हवा) + औगा (आँखें) = विण्डो

नॉर्स एक मध्यकालीन भाषा है। रूसी भाषा में खिड़की को ओखनोह (okho) कहते हैं। और आँख ओक (oko) कहाती है।

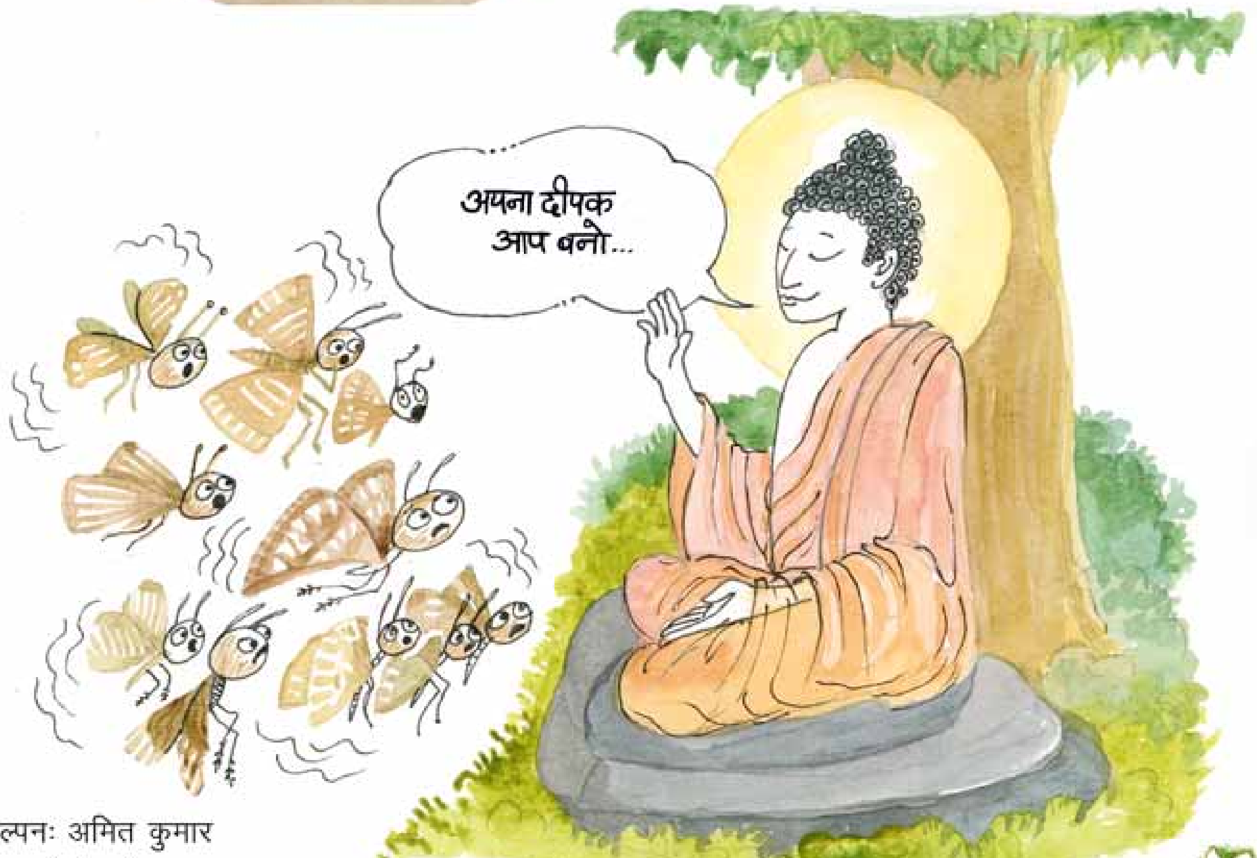
अंग्रेज़ी एंग्लो-सैक्सन नाम की एक मध्यकालीन भाषा के रस्ते आई। एंग्लो-सैक्सन में खिड़की को ईगडीरेल (eagdyrel) कहते हैं। यहाँ ईगडीरेल को आई-होल (आँख के सुराख़) की तरह दर्ज किया गया है। एंग्लो-सैक्सन लोग शरीर को एक बन्द इकाई मानते थे। और आँख को इस बन्द इकाई के सुराख़ की तरह देखते थे। यानी आँखें वे हैं जो अन्दर और बाहर को जोड़ती हैं।

देखना और खिड़की के मायने आपस में जुड़े हुए लगते हैं। ये बात दरवाज़ों के बारे में नहीं कही जा सकती। दरवाज़े अन्दर और बाहर को अलगाते हैं। इक लकीर-सी खींचते हैं। अन्दर और बाहर के बीच। दरवाज़ों पर आवक-जावक बनी रहती है। आप वहाँ देर तक खड़े नहीं रह सकते। आपको तय करना होता है कि आप उसे पार करेंगे या लौट जाएँगे। पर खिड़कियाँ अपनी जगह पर बनी रहती हैं। आप वहाँ घण्टों खड़े रह सकते हैं। बैठे रह सकते हैं। बिना बाहर जाए बाहर का हिस्सा हो सकते हैं। खिड़की

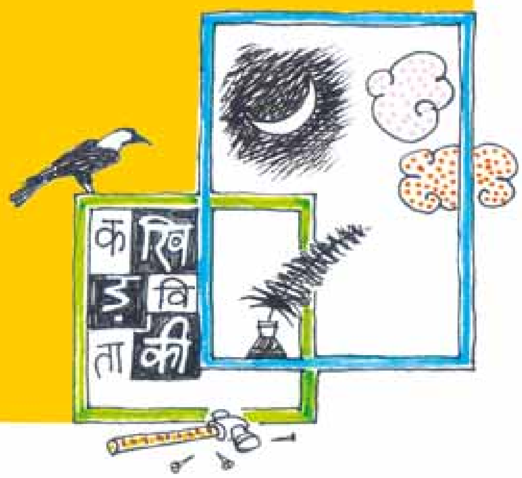


पर अटके बाहर को देखने भर तक के लिए भीतर ला सकते हैं।

खिड़की से देखना, एक कहानी को घटते हुए देखने-सा होता है। मेरे सामने की खिड़की से मुझे कई पेड़ दिख रहे हैं। एक पीपल का, और कई सफ़ेदे के। कतार से खड़ी मोटरसाइकिलें। कोने में चाय की एक गुमटी। वहाँ बैठे लोग। एक रंगीन झोला टाँगे चलती एक औरत। मोटरसाइकिल पर टिककर एक-दूसरे से बतियाते दो लोग। एक और मोटरसाइकिल से टिका एक अकेला आदमी। यह अभी-अभी का दृश्य है। अगले पल यहाँ कुछ और होगा। पल भर पहले कुछ और था। खिड़की का फ़्रेम इन कहानियों की जगह तय किए हुए हैं। मेरे देखने का पाला बनाए हुए हैं। इस खिड़की-पाले का अपना सुकून है। वो बाहर जिनके लिए मेरी आखें, मेरा देखना शायद कभी काफ़ी न पड़े, इस खिड़की की वजह से अपने आप में पूरा-पूरा लग रहा है।



आकल्पनः अमित कुमार
चित्रः तापोशी घोषाल



भिक्षुक

सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"
चित्रः देबब्रत घोष



वह आता –
दो टूक कलेजे को करता, पछताता
पथ पर आता।

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को – भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता –
दो टूक कलेजे को करता, पछताता
पथ पर आता।

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया दृष्टि-पाने की ओर बढ़ाए।

भूख से सूख ओठ जब जाते
दाता-भाग्य विधाता से क्या पाते?
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे सभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए!

ठहरो! अहो मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूँगा
अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम
तुम्हारे दुख मैं अपने हृदय में खींच लूँगा।

शब्दों का चित्र

कृष्ण कुमार

दो शब्दों की छोटी-सी पंक्ति से शुरू होने वाली यह प्रसिद्ध कविता लम्बे समय से कई पाठ्यपुस्तकों में शामिल रही है। पढ़ाई कैसे जाती है, यह अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। अध्यापकों और परीक्षकों का ध्यान भिखारी की ग़रीबी, कवि की संवेदनशीलता और पाठक की करुणा जगाने पर केन्द्रित रहता है। कविता को एक निश्चित भावार्थ देना भाषा और साहित्य की शिक्षा में एक मज़बूत परम्परा बना रहा है। निराला की यह कविता इस भाग्य से कैसे बच सकती है? कोई पूछ सकता है कि इस तरह पढ़ाने में क्या बुराई है? प्रश्न बुराई का है भी नहीं, कविता और उसे पढ़ने वाले की अनदेखी का है। यदि 'भिक्षुक' पढ़कर विद्यार्थी निराला को और कविताओं को पढ़ने के लिए लालायित नहीं होता तो यह चिन्ता और दुख़ की बात है।

निराला बहुत विशेष कवि थे। उनकी यह कविता अवश्य दुख़ की रचना है पर इसकी ख़ास बातें वैसी हैं जैसी निराला की उन कविताओं में मिलती हैं जिनमें वे सुन्दरता का सुख पैदा करते हैं - फूल, सुबह, बादल, शाम या किसी भी और विषय की। निराला के थोड़े-से शब्दों से 'जूही की कली' में हमें हवा की तेज़ रफ़्तार से चलती हुई कली दिखाई भी देती है और महसूस भी होती है। 'भिक्षुक' में भूख से जर्जर हो चुके शरीर का दृश्य है। लगभग सौ साल पुराना यह चित्र, सम्भव है आज कुछ अतिरंजित लगे और अब तो भिखारी तरह-तरह के सन्देह भी जगाते हैं। पर शब्दों और ध्वनियों की मदद से बनाया गया चित्र ध्यान अवश्य खींचता है। आगे चलकर चित्र में दो भूखे-नंगे बच्चे शामिल हो जाते हैं। शहरों के चौराहों पर भीख माँगते बच्चे आज भी दिख जाते हैं। कई लोग कार का शीशा नीचा करके या बस की खिड़की से उन्हें भीख देते भी देखे जा सकते हैं। निराला का खींचा चित्र अभी मिटा नहीं है। शायद सुदूर भविष्य में मिट जाए, पर कविता में उसका जीवित रहना तय है और वह कविता की शक्ति का सबूत बना रहेगा।

आख़िरी तीन पंक्तियों में शेष कविता का धीमा गति-चित्र फट-सा जाता है। निराला की कई कविताओं में ऐसा होता है। अफ़सोस और दया की सीमा अचानक से खड़ी होती है और नए शब्द उसे तोड़ डालते हैं। हमें लगता है कि जो दूरी हमने बनाए रखी थी, एकाएक मिट गई। कल्पना में ही सही हम कुछ से कुछ हो गए। निराला खुद भी ऐसे थे - समाज में फैली तीखी ग़ैर-बराबरी उन्हें बर्दाश्त नहीं होती थी। निराला की आर्थिक मदद करना मुश्किल होता था। क्योंकि वे अपनी कोई भी चीज़ अपने से ज़्यादा ज़रूरतमन्द को दे डालते थे। इसलिए उनके एक जीवनीकार ने उन्हें 'महाप्राण' बताया है। सिर्फ़ नाम के निराले नहीं थे निराला। उन्होंने हिन्दी कविता को इस कदर बदल दिया कि वह अपने पुराने ढर्रे पर लौट नहीं सकी। एक ही जगह वह ढर्रा बचा है - हिन्दी की कक्षा में!

दो बगुले

प्रभात

चित्रः देबब्रत घोष



दो बगुले दो चार कदम
चले, मिले दो चार कदम
कदम की फैली शाख़ों में
कौए बैठे कदम कदम

कदम के नीचे बगुलों ने
सोचा हम भी ले लें दम
सुन्दर ताल किनारा है
यहीं एक मछुआरा है

जाल डालकर बैठा है
पर अपना क्या लेता है
ताल में मछली ख़ासी है
लेकिन भूख ज़रा-सी है

नमी रेत में बाक़ी है
यहीं केकड़े काफ़ी है
डिनर यहीं पर ले लेंगे
चाँद उगे पर खेलेंगे
झींगुर गाएँगे छम-छम
सुनकर सो जाएँगे हम




RAJ
XEROX
PRINT
A4 SIZE 2.00
A3 SIZE 5.00



एक मैन्युअल

मिर्चीबड़ा

हिमांशु व्यास
चित्रः प्रिया कुरियन

इस तगड़े शब्द में मौजूद 'मिर्ची' और 'बड़ा' अपने स्वभाव का जैसे ऐलान कर देते हैं। बड़ा दही में भी पाया जाता है और पाव में भी। दही में बड़ा असहाय-सा रहता है और पाव में दबा छुपा-सा। पर जोधपुर का मिर्चीबड़ा बड़े जितना छोटा नहीं होता। ये बड़ा बड़ा होता है।

मिर्चीबड़ा आता तो नमकीन घराने से है पर बाक़ियों से कहीं ज़्यादा तगड़ा दिखता है। इस घराने

की सारी चीज़ें ख़ास ज्यॉमेट्रीकल आकार लिए होती हैं। किसी भी नमकीन की ज्यॉमेट्री और स्वाद में एक गहरा एर्गोनॉमिक सम्बन्ध है। एर्गोनॉमिक्स को एक उदाहरण से समझते हैं। क्रिकेट बैट या इस्त्री को देखते ही पता चल जाता है कि उन्हें कैसे पकड़ना है। यही इनकी एर्गोनॉमिक्स है। अब मिर्चीबड़े की एर्गोनॉमिक्स पर आते हैं। इसे देखते ही समझ आ जाता है कि मिर्चीबड़े की ग्रिप कहाँ होगी। और उसमें पहली 'डच्ची' कहाँ और कैसे मारनी है!

मिर्चीबड़ा कैसे खाएँ?

इस मैन्युअल में मिर्चीबड़ा खाने के कुछ आवश्यक स्टेप्स हैं। फ़िलहाल यूट्यूब पर इसका कोई DIY यानी डू इट योरसेल्फ़ मौजूद नहीं है। अच्छा होगा कि मेरी तरह आप भी अपना पहला मिर्चीबड़ा जोधपुर की गलियों में किसी उस्ताद की निगरानी में खाएँ। यह प्राचीन विद्या कला और विज्ञान के तालमेल से अब भी जारी है। शुरू में ही इस एडवेंचर के तीन तकनीकी शब्दों को जान लेना स्वादिष्ट रहेगाः

1. डच्ची 2. सिसकारो 3. टुचकड़ी

डच्ची एक ऑ-नो-मा-टो-पो-इक शब्द है। ऑनोमाटोपोइक शब्द यानी किसी आवाज़ को ही शब्द की तरह लिख देना। जैसे, घड़ी की टिक-टिक, गरम सूप की सिप और मिर्चीबड़े की डच्ची!

जोधपुर में जब किसी भी अति-स्वादिष्ट या गरमा-गरम व्यंजन को बिना देर किए खाना होता है तो उसमें सीधा डच्ची मारी जाती है। डच्ची एक डाइरेक्ट एक्शन है। इसमें चम्मच, पेपर नैपकिन या काँटा-छुरी जैसा कोई मध्यस्थ नहीं होता। डच्ची कहाँ और कैसे मारनी है, उसी पर मिर्चीबड़े का मज़ा निर्भर करता है।

लगे हाथ जान लें कि मिर्चीबड़ा खाने वाले क्या कॉमन मिस्टेक्स करते हैं। मिर्चीबड़ा खाने में अप्रशिक्षित लोग उसे पेपर नैपकिन से थामने लगे हैं। इससे वे बेसन की गर्माहट में छुपी स्वाद की आहट को सुन नहीं पाते। जीभ से पहले, उँगलियों के पोरों को उस तपते पिण्ड को चखने दीजिए।

कई लोग मिर्चीबड़े को किनार से खाना शुरू करते हैं। ऐसा करने से वे उसकी मोटाई के कारण बीच में भरी मिर्ची या मसाले तक पहुँच नहीं पाते। महज़ बेसन-बेसन को कुतर कर रह जाते हैं।

मिर्चीबड़े की आन्तरिक संरचना की जानकारी डच्ची मारने में बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। ऊपर है आकरे (कुरकुरे) बेसन की परत, फिर बेसन की गद्देदार सतह, आलू के मसाले वाली परत और सबसे अन्दर हरी, लौ-सी लपलपाती मिर्च। और उस मिर्च के भीतर महीन मसाला...

मिर्चीबड़े को एक माइक की तरह थामिए और एक रॉकस्टार की तरह उसे मुँह के क़रीब लाइए। हथेली और पोरों में उसकी खुरदुरी गर्माहट को महसूस करते हुए मुँह को खोलते जाइए। मिर्चीबड़े के ऊपरी छोर को मुँह में लगभग एक-चौथाई अन्दर भर लीजिए। फिर उस छोर को अपने आगे के दाँतों से एक गहरा कट्ट दीजिए। आपको अन्दर एक 'डच्च' सुनाई देगी। एक सफल डच्ची की पहचान यह है कि डच्ची-पश्चात आपको मिर्चीबड़े के अन्दर पाँच हरी-भूरी परतें दिखेंगी। साथ ही भाप पे तैरती मसालों की गन्ध...

हमने डच्ची मारी ही है। अब उसकी गर्माहट मिर्च-मसाले के साथ हमारे मुँह में धुआँधार मचा रही है। आँखों से थोड़ा पानी आ रहा है। मुँह हा हा हा हा



हो रहा है। इसी पड़ाव पर अकसर मिर्चीबड़ा खाने वाले पानी पीकर सेल्फ़-गोल कर बैठते हैं। पानी जलन ज़रूर दूर करेगा पर आप सारे स्वाद से जीभ धो बैठेंगे। मिर्चीबड़ा खाने का एडवेंचर एक लिजलिजे पानी-बड़े को निगलने में बदल जाएगा।

अनुभवी रसिकों की संगत में जब हमें बचपन में डच्ची मारनी सिखाई जाती थी तो मुँह जलते ही किसी बुज़ुर्ग की आवाज़ आती, "सिसकारो ले! सिसकारो!" अपने होंठों को गोल कर के हवा का एक लम्बा जेट अन्दर खींचिए। सिस्स्स की आवाज़ के साथ हवा जैसे ही जलती हुई जीभ से टकराएगी, जलन ऐसे ग़ायब हो जाएगी जैसे वैक्यूम क्लीनर के आगे बिखरी धूल। अब आप अपनी अगली डच्ची के लिए तैयार हैं।

टुचकड़ी मारवाड़ी के टुचकी शब्द से बना है। टुचकी यानी किसी भी भीमकाय वस्तु का पिद्दी-सा छोर। जैसे हाथी की पूँछ। मिर्चीबड़े के अन्त में निकला हुआ मिर्ची का मूँछ जैसा सिरा उसकी टुचकड़ी कहाती है। गुरुजन हम बच्चों को कभी भी टुचकड़ी तोड़ने नहीं देते थे। वर्ना मिर्चीबड़ा एक थुलथुल गुब्बारे-सा दिशाहीन दिखता जिससे मिर्च के मोटे भाग में डच्ची मारने का ख़तरा बना रहता। तो ध्यान रहे कि अन्त में मिर्चीबड़े की टुचकड़ी बची रहे।

अब हमारी उँगली और अँगूठे के पोर के बीच है टुचकड़ी। और टुचकड़ी पर है मिर्चीबड़े की छूटी हुई ख़ाली जगह। वैसी ही जगह जैसी कवि-कथाकार विनोद कुमार शुक्ल को हाथी के आगे निकल जाने पर दिखी होगी। जब उन्होंने लिखा था – "हाथी आगे-आगे निकलता जाता था और पीछे हाथी की ख़ाली जगह छूटती जाती थी।"



मेरे आँगन की मुर्ग़ियाँ

डॉ. रेशमा परवीन
चित्रः ऋषि साहनी

मेरी भाभी का मुर्ग़ियाँ पालने का शौक़!

भाभी का सपना था कि रिटायरमेंट के बाद वे घर में मुर्ग़ियाँ पालें। और हम सब उन्हीं मुर्ग़ियों के अण्डे नोश फ़रमाएँ। जब इरादा कर लिया तो सब सिर जोड़ कर बैठे कि मुर्ग़ियाँ कहाँ से ली जाएँ? कितनी ली जाएँ? लाएगा कौन और कौन-कौन उनकी देखभाल करेगा। इस माथापच्ची में बड़ा वक़्त लग गया। हमनें तय किया कि मुर्ग़ियाँ पास के गाँव के हाट से ही ली जाएँ। वहाँ दो हज़ार में पाँच मुर्ग़ियाँ और एक मुर्ग़ा मिल रहा है।

फिर क्या, पूरा घर उनके रहने के इन्तज़ाम में जुट गया। घर में एक दरबानुमा जगह थी जहाँ हमारे मालियों का सामान रखा था। मुर्ग़ियों के रहने के लिए वो जगह सबको पसन्द आई। पर अब मालियों का सामान कहाँ जाता? घर के पिछवाड़े में एक बाथरूम था जो इस्तेमाल में कम ही लिया जाता था। सामान वहाँ पटक दिया गया। सलीक़े से रखने के लिए वक़्त और सुकून चाहिए होता है। वो माली दादा के पास था नहीं। हफ़्ता भर यूनिवर्सिटी में काम करते। और हमारे यहाँ इतवार को ही आते। वो भी आधा दिन, सुबह सात से दोपहर दो तक।

मुर्ग़ियाँ लाने की ज़िम्मेदारी उन्हें सुपुर्द की गई। अगले इतवार सुबह माली दादा और घर के साहिबज़ादे मोटरसाइकिल पर मुर्ग़ियाँ लेने निकले। साथ में एक बड़ी-सी बन्द टोकरी थी।

भाभी ने पहले से ही दाने-चबेने का इन्तज़ाम कर रखा था। मुर्ग़ियाँ ज़रा देर को भूखी न रहें इसलिए 500 रुपए के दाने मँगा लिए गए थे। भाभी बार-बार दरबे को देख आतीं। सब इन्तज़ाम दुरुस्त होने चाहिए। उनकी दिली ख़्वाहिश पूरी होने जा रही थी। कोई दो घण्टे बीते थे कि मोटरसाइकिल की आवाज़ सुनाई दी। जैसे ही वो रुकी, भाभी ने साहिबज़ादे के हाथ में पकड़ी टोकरी सम्भाली। मुर्ग़ियाँ आ गयी थीं।

टोकरी को कुछ देर बरामदे में रखा गया। भाभी बड़े प्यार से उन्हें देखती रहीं। और टोकरी पर हाथ फेरती रहीं। टोकरी का ढक्कन एक कोने से उठाकर कुछ दाने टोकरी में डाल दिए गए।

"कितनी ख़ूबसूरत हैं! बिलकुल नए डिज़ाइन वाली। ख़ूबसूरत धारियाँ, काली, भूरी और सफ़ेद रंगों के कॉम्बिनेशन के साथ।" वाकई, यह मुर्ग़ियाँ आमतौर पर दिखने वाली मुर्ग़ियों से एकदम अलग थीं।

माली दादा ने दरबे में एक मोटी-सी लकड़ी लगा दी थी। उस पर जब मन चाहे मुर्ग़ियाँ बैठ सकती थीं। मुर्ग़ियों को दरबे में छोड़ दिया गया। दाना-पानी का पूरा ख़्याल रखा गया।

दिन ठीक-ठाक कटा। पर रात होते ही मुर्ग़ा अपने शबाब पर था। चाचाजान का कमरा ठीक दरबे के सामने था। उनकी नींद बड़ी हलकी थी। एक इशारे भर में उनकी आँख खुल जाती थी।

रात होते ही मुर्ग़े ने जो अज़ानें देना शुरू कीं...तौबा! ऐसा मुर्ग़ा जो सुबह होने से पहले ही अज़ान देता हो! और उसकी आवाज़ ऐसी कि सारा चैन फ़रार हो जाए। ऊपर से चाचीजान के ख़र्राटे मुर्ग़े की आवाज़ के साथ जुगलबन्दी क़ायम कर रहे थे। चाचाजान का अजब हाल था।

मुर्ग़े की सुबहचीनी से पड़ोसियों का जीना दूभर हो गया था। पड़ोसी कहलवाते कि यह चार बजे ही हमें जगा देता है। हमें समझ नहीं आता कि उन्हें कैसे सुनाई दे जाता है। उनके कान में तो ऊँचा सुनने की वजह से आला लगा हुआ था। शुगर के मर्ज़ ने उनके दोनों कानों को बिलकुल चौपट कर दिया था। भाभी के सामने जब उनकी फ़रियाद पेश हुई तो उनका जवाब था, "हमसे आगेवालों के कुत्तों का शोर हम हर वक़्त सुना करते हैं। वे हमारी मुर्ग़ियों की आवाज़ें बर्दाश्त कर लें।"

रात में दरबे की तरफ़ खुलनेवाली खिड़की को भी बन्द करके रखना पड़ा। अब मुर्ग़ियाँ घर का एक ख़ास हिस्सा बन गयी थीं। चाचाजान की छोटी बेटी जीजी रानी को उनसे ख़ास लगाव हो गया था। वैसे भी पड़ोस के सभी पालतुओं से जीजी रानी की बहुत पटती थी। शेख़ साहब के कुत्ते शेल्बी और स्कूबी भी उसे ख़ूब पहचानते थे। हमारी मुर्ग़ियों को खोलकर घुमाने का काम भी जीजी रानी ने ले लिया। वह हर मुर्ग़ी को पहचान गयी थी। कौन-सी वाली खोजी है, कौन-सी उत्साही, कौन-सी ख़ामोश-तबियत और कौन-सी लाड़ करने वाली है।

पुष्पाजी ने भी खुद-ब-खुद उनकी देखभाल की ज़िम्मेदारी ले ली। जैसे सुबह को दाना और दोपहर को सब्ज़ी, फल, रोटी वग़ैरह डालना। पुष्पाजी आतीं तो मुर्ग़ियाँ उनकी आवाज़ सुनकर फड़फड़ाती हुईं दरवाज़े की तरफ़ लपकतीं।

उस्मान दोपहर भर उनसे ख़ूब खेलता। काली-भूरी को अपनी शर्ट पहनाकर एक से दूसरे कमरे में घूमता रहता। उसने मुर्ग़ियों के नाम भी रख दिए थे – मधुबाला, मीना कुमारी, वहीदा रहमान और मुर्ग़ा था अमजद ख़ान।

अकसर मुर्ग़ा उस्मान के हाथ से रोटी झपटकर ले जाता। वो ज़ोर से चीख़ता। आँगन में धूप सेंक रहे बड़े लोग उसे बचाने दौड़े चले आते।

आज जब बेबी बाजी दरबे के पीछे लगी क्यारी से पालक तोड़ने जा रही थीं तो एक मुर्ग़ी ने उन्हें देख लिया। वह ऊपर बाँस पर चढ़ गयी। उसकी देखा-देखी सारी मुर्ग़ियाँ एक-एक कर लाइन से बाँस पर चढ़ उनको निहारने लगीं।

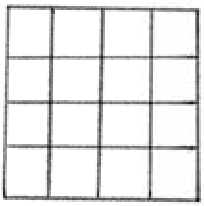
सुबह नाश्ते के समय चाचाजान बड़ी चाचीजी से बात कर रहे थे। "इस मुर्ग़े की तो आवाज़ ही नहीं बन्द होती है। क्या किया जाए?" चाचीजी बोलीं, "मुझे भी इसका बांगना ठीक नहीं लगता। इसका कोई न कोई इलाज करना ही पड़ेगा।"

अब इलाज तो होता रहेगा भाई। हम तो अण्डे खा रहे हैं और बाँट भी रहे हैं। भाभी के साथ-साथ कइयों की दिली मुराद पूरी हो गई।

थाथापच्ची



1 2520
इस संख्या में क्या ख़ास है?



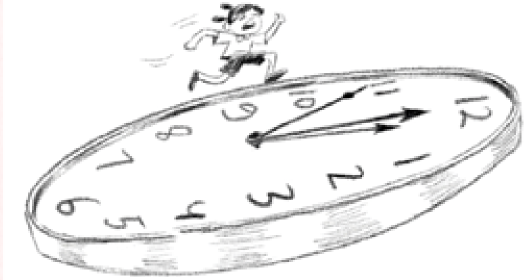
2 इस बोर्ड में कितने चौकोन हैं?



3 एक 6 इंच व्यास का ऊन का गोला है। उससे एक जोड़ी दस्ताने बन सकते हैं। एक 12 इंच व्यास के ऊनी गोले से उसी नाप के लगभग कितने जोड़ी दस्ताने बन सकते हैं?



4 100 को दो ऐसी संख्याओं में बाँटो कि एक हिस्से का एक-चौथाई दूसरे हिस्से के एक-छठे हिस्से से 20 अधिक हो।



5 अगर किसी घड़ी को 8 बजाने में आठ सेकण्ड लगते हैं तो वो घड़ी 12 बजाने में कितने सेकण्ड लेगी?

6 एक चोर है और एक सिपाही है। दोनों के बीच 28 क़दम का फ़ासला है। जितनी देर में चोर 9 क़दम लेता है, उतने समय में सिपाही 5 क़दम लेता है। लेकिन सिपाही के 2 क़दम चोर के 5 क़दमों के बराबर हैं। चोर को पकड़ने के लिए सिपाही को कितने क़दम लगेंगे?



चित्रः हबीब अली

1. 1 से 10 तक सभी अंकों से भाग होने वाली न्यूनतम संख्या है, 2. 30, 3. करीबन आठ, 4. 88 और 12, 5. 12 4/7 सेकण्ड से ज़रा ज़्यादा। आठ बजने में काँटा सात बार रुकता है। यानी हर अन्तराल की अवधि हुई औसतन 1 1/7 सेकण्ड, 6. 72





दहन

मीनाक्षी नटराजन
चित्रः ऋषि साहनी

वल्लरी हड़बड़ाकर उठ बैठी। आँख लग गई थी या होश नहीं रहा था – पता नहीं। पसीने से तरबतर वो इधर-उधर देखने लगी। चेहरा सूना पड़ गया था। घबराकर वल्लरी जैसे-तैसे खड़ी हुई। पाँवों में जैसे ताक़त नहीं रही थी। बालों की जटाएँ बन गई थीं।

वल्लरी धीरे-धीरे पेड़ों के झुरमुट से बाहर निकली। फिर अपनी बस्ती की ओर बढ़ने लगी। पर कहाँ थी बस्ती! पूरे नगर में धुआँ भरा था। गली-गली में चीख़-पुकार मची थी। पन्द्रह-सोलह साल की वल्लरी कान बन्द किए चलने लगी। धुएँ ने नज़र को ढँक लिया था। गला सूख रहा था। आँखों में जलन थी। साँस लेने में मुश्किल थी। होंठ सूख रहे थे। खाँसी चल रही थी। वल्लरी बस चलती चली जा रही थी। नगर पीछे छूट गया था। एक कच्चे रास्ते से होते हुए वो वहाँ पहुँच गई जहाँ से सारा नगर दिखाई देता था।

दो दिन पहले उसका नगर धूँ-धूँ कर जल रहा था। दूर राजा का महल और उसके मंत्रियों का रहवास दिखाई दिया। क्या आग वहाँ भी फैली थी? शायद नहीं। पर वहाँ से भी धुआँ उठता दिख रहा था। शायद वो राजसी रसोई से उठता धुआँ था। ऊँची चारदीवारी के भीतर बसा महल और उसमें रहते राज-समाज के लोग। आपदा से दूर। क्या प्रकृति भी छोटे-बड़े में भेदभाव करने लगती है?



वल्लरी वहाँ से उतरने लगी। परकोटे से बाहर, नगर के दक्षिणी हिस्से में उनकी बस्ती थी। जहाँ अब सिर्फ़ राख का ढेर है। लकड़ी और बाँस से बने घर कब तक टिकते? तमतमाती आग की लपटों में समाते गए।

वल्लरी की छोटी-सी कुटिया भस्म हो गई। दो दिन पहले की ही तो बात है। बाबा मछली पकड़ने जाने वाले थे। छोटी डोंगी और जाल वहीं चौपाल पर पेड़ों के साथ बँधे रखे थे। वल्लरी की माँ अशोक वाटिका में काम करती थी। घास काटना, निराई-गुड़ाई करना, क्यारी सींचना, फल-सब्ज़ी तोड़ना। कुछ महीनों से वल्लरी भी साथ जाने लगी थी। उस दिन जब सुबह उसकी नींद खुली तो उसने सोचा कि वो आज माँ के साथ अशोक वाटिका नहीं जाएगी। बाबा के साथ समन्दर किनारे जाएगी। वहाँ रेत के टीले बनाएगी। पर वो सब ख़्याल ही बने रह गए।

अचानक आग लगी और सब जल गया। पहने कपड़ों को छोड़ कुछ नहीं बचा। डोंगी और जाल, मिट्टी के बर्तन, सूखी मछली और कोठार में रखा थोड़ा-सा चावल, चार मुर्गियाँ, सब जल गया।

वल्लरी, उसके बाबा और बस्ती के सब लोग जान बचाकर भागे। उस दिन साँस लेते समन्दर को देखना जैसे बर्दाश्त के बाहर था। इतने सारे पानी से क्या फ़ायदा?

इन सबके बीच वल्लरी को अशोक वाटिका का ख़्याल आया। वहाँ कुछ महीनों से अंग रक्षिकाओं से घिरी एक औरत रहती है। मैली धोती पहनती है। त्रिजटा ने उन्हें कुछ कपड़े दिए। त्रिजटा ने बताया कि वो भी एक राजरानी है। और यह कि हमारे राजा उनका अपहरण करके लाए हैं। उस स्त्री के पति ने राजा की बहन का अपमान किया था। सो वो उसका बदला ले रहे हैं।

पर उस स्त्री ने क्या किया था? उसका क्या क़ुसूर? राजा की बहन उस औरत के पति और देवर से शादी करना चाहती थी। देवर ने उसकी नाक काट दी। शादी की इच्छा व्यक्त करने में ऐसा क्या ग़लत था?

धीरे-धीरे उस स्त्री को त्रिजटा से लगाव हो गया। वल्लरी से भी वो बहुत प्यार से बोलती थी। लोग उसे देवी कहते थे। वल्लरी ने ही उसे अशोक वृक्ष के पीछे विशाल बड़ का पेड़ दिखाया था। शुरू-शुरू में तो देवी एकदम बेमन रहीं। पर कुछ समय के बाद बस दिन भर वही देखती रहती थी। थोड़ी दूरी पर केले का बगीचा था। फिर सुपारी, नारियल, ताड़, कटहल के बड़े पेड़ थे। कभी-कभी सागर पार से पक्षियों का कारवाँ अशोक वाटिका से सटे सरोवर के किनारे लगे पेड़ों में आ बैठता। कुछ पक्षी बड़ तक भी उड़ आते। वह कहती, "वल्लरी! ज़रा उस पक्षी के बारे में बताना। उसकी गर्दन तो देखो...।" कभी उदास होकर कहती, "वल्लरी, ये पक्षी कितने आज़ाद हैं। कहीं भी उड़ सकते हैं। क्या ये मेरा सन्देश ले जा सकेंगे?" वल्लरी सोचती कि काश बाबा के पास बड़ी नाव होती। वो ख़ुद सागर पार जाकर उनका सन्देश दे आते। पर कहाँ जाना है? उनके पति कहाँ रहते हैं? पता नहीं। और फिर बाबा को बड़ी नाव कौन देगा? वो तो सिर्फ़ डोंगी ही रख सकते हैं।

"वल्लरी! क्या तुम कभी उस पार गई हो?" अब भला बाबा की डोंगी से उस पार क्या जा पाती? हाँ, पर थोड़ी दूर ज़रूर गई थी।

वल्लरी ने देवी को सागर किनारे से शंख-सीपी भी लाकर दिए थे। वो क्षणभर के लिए ही सही, हँस पड़ी थी। वल्लरी को गले से लगा लिया था। "वल्लरी! तू मोगरे की डाल-सी है रे। चल मैं तेरे बाल सुलझा दूँ।"

"नहीं, नहीं। स्वामिनी से डाँट पड़ेगी। हम छोटे लोग हैं।" वल्लरी छिटक कर दूर हो गई।

"त्रिजटा कुछ नहीं कहेगी।"

"मगर आप भी तो राजरानी है।" वल्लरी ने हाथ जोड़कर कहा। हाथ जोड़ना, झुकना, बिना कुछ कहे सहना बचपन से सिखाया गया है। देवी की आँखें भर आई थीं।

"पता नहीं, वल्लरी। पिता को मैं खेत में मिली थी। वे राजा थे। अयोध्या के राजकुमार से विवाह हुआ। उन्हें वनवास मिला और मैं उनके साथ चल दी। अब एक दूसरे राजा ने अपहरण कर बन्दी बना लिया है। इन सबमें मैं क्या थी, क्या हूँ, कभी सोचा ही नहीं। अब सोचने लगी हूँ।"

वल्लरी एकटक देख रही थी। बोली, "क्या बन्दियों को सोचने की आज़ादी होती है?"

वल्लरी अपने घर की, बस्ती की औरतों के बारे में सोचने लगी। वहाँ की औरतें भी तो रोज़ मार खाती हैं। पर चोट सहलाकर अगले दिन और फिर उसके अगले दिन की राह देखने लगती हैं। क्या उसकी माँ, यह रानी और गली की सारी स्त्रियाँ - सब बन्दी हैं?

वल्लरी चौंक कर अपने अभी में लौटी। उसे फिर दो दिन पहले का अग्निकाण्ड याद हो आया। आग बुझाने की असफल कोशिशों के बीच लोगों की कानाफूसी, ग़ुस्सा सब सुनाई पड़ रहा था। नगर कर्मचारी कह रहे थे कि कुछ गुप्तचर आए थे। देवी को ढूँढते हुए। उनमें से एक तो अशोक वाटिका तक जा पहुँचा था। वो और उसके साथी आग लगा गए। माँ और बस्ती की औरतें बदहवासी में भी बुदबुदा रही थीं। क्या यह देवी की आह थी जो सारे नगर में भभक रही थी?



वल्लरी की आँखें ग़ुस्से से लाल हो गईं। हमने क्या किया था? हमारी बस्ती को क्यों ख़ाक करा? वो जिसने हरण किया, बन्दी बनाया, उसका तो कुछ नहीं बिगड़ा। देवी कहती थी कि उसके स्वामी करुणा निधान हैं। यह कैसी करुणा? करुणामय स्वामी के सेवक क्या ऐसे होते हैं? क्या हर राज्य व्यवस्था, हर शासक ऐसा ही होता है? अब उस देवी से कभी बात नहीं करूँगी।

वल्लरी ने अपनी मुट्ठियाँ भींच लीं। उसे कुछ चुभने का अहसास हुआ। ओह... लकड़ी की पुतली। देवी ने बनाकर दी थी। दो दिन पहले हाथ में लेकर झोपड़े से बाहर निकली थी। तभी आग फैलती दिखाई पड़ी थी। वही अब तक साथ रह गई। वल्लरी देखने लगी। पुतली की आँखों में भी उदासी थी। उसका मुँह धुएँ से स्याह पड़ गया था।

उसे पुतली की आँखों में देवी की आत्मीयता दिखाई दी। "वल्लरी! कहाँ थी? पता है मैं कितनी फ़िक्र कर रही थी? सुना है पूरे नगर में आग लगी थी। तू ठीक है ना?"

वल्लरी अब पूरे होश में थी। उसकी आँखें नम थीं। उसके कदम अशोक वाटिका की तरफ़ बढ़ने लगे। देवी सुरक्षित होंगी ना?

"निकुम्भला माँ, उनकी रक्षा करना। उन्हें हर दहन से बचाना।"

दो क़िस्से

तज़ीन अली
चित्रः ऋषि साहनी



रफ़्तार खो गया है

मेरे दोस्त अनिबल का कछुआ ग़ायब है। उसका मैसेज आया कि रफ़्तार घर से भाग गया है। मैं रफ़्तार से कभी नहीं मिली हूँ। मैंने उसको सिर्फ़ तस्वीरों और वीडियोज़ में देखा है। उसका नाम ही रफ़्तार है फिर भी उसकी रफ़्तार के बारे में कभी नहीं सोचा। अब सोचती हूँ कि उसकी रफ़्तार के बारे में न सोचना कितना ग़लत था। कुछ भी हो मगर एक कछुए की भी रफ़्तार है।

मुझे बिल्लियों के साथ रहते पाँच साल हो गए हैं। इस दौरान चार-पाँच बार कभी एक तो कभी दूसरी बिल्ली भागी भी है। जब पहली बार मेरी दोस्त का बिल्ला ग़ायब हुआ तो हम यह तो जान गए कि वो कहाँ से निकलकर गया होगा। वो कहाँ गया होगा, ये सोचने में हमें बिल्ली के सोचने का थोड़ा अन्दाज़ा बिठाना पड़ा। कि बिल्ला हमेशा घर रहा है, वो डरा हुआ होगा। तो कहाँ छिप कर बैठ सकता है। और किस एक नाम से आवाज़ लगानी है। घर रहते-रहते एक ही बिल्ले के बीसों नाम हो गए थे। बहरहाल हमने अपनी गली छानी, आगे-पीछे की गालियाँ फिरे, पड़ोसी के घर दरख़्वास्त कर-करके ढूँढा। बीच में बारी-बारी ब्रेक लिया। रोये भी। कुछ भलमन लोगों ने देखा तो वो भी जुट गए। ये सब रात के एक बजे हो रहा था। कुछ चार घण्टे फिरने के बाद हमने अपनी बिल्डिंग के ठीक नीचे खड़े ऑटो में देखा। सीट के पीछे उसकी दो आँखें चमक रही थीं।



उस गली में वो हमारा पाँचवाँ साल था।

रफ़्तार अपने घर में नहीं रह रहा था। वो हमारे यानी इंसानों के शहर की एक कॉलोनी के घर में रह रहा था। अगर अपने घर से निकलता तो वो घूमना होता। हमारे घर से निकला है सो गुम गया।

किसी शहर में कहीं पहुँचने के कितने ही नक़्शे होते हैं। वो मिलने के नक़्शे हुए। पर मिलने से ज़्यादा स्वाभाविक तो गुमना होता है। क्या गुमने का कोई नक़्शा बनाया जा सकता है? ताकि अगर कोई चीज़ या रफ़्तार जैसी कोई जान खो जाए तो उनको ढूँढ़ने की जगहों का ठीक-ठाक अन्दाज़ मिले। हमें गुमने की जगहों के पते पता रहे।

आसमान, बिल्लियाँ और चिड़ियाँ

हम अपनी बिल्लियों के साथ रहते हैं। और उनके बारे में काफ़ी सारे नहीं-पताओं के साथ भी। दोपहर में वे होती हैं और मैं होती हूँ। तब उन सब पता-नहियों का वज़न थोड़ा और बढ़कर पता चलता है। जैसे मुझे नहीं मालूम कि जब उनकी आँखें आसमान ताकती हैं तो वे क्या देख रही होती हैं? अगर हमारी बिल्लियों ने कभी मुझसे पूछाः "दोपहर में हम दरवाज़े पर पसरे धूप के टुकड़े में नींद निकालते हैं। जब नींद निकल जाती है और हम आँखें खोलते हैं तो दिन और उसके सारे साज़-ओ-सामान इस पार से उस पार हो चुके होते हैं। धूप भी बस उतनी ही दिखती है जितनी किसी लिफ़ाफ़े के अन्दर रखी चिट्ठी दिखती है।

दिन और उसके बादल, पतंगे, चिड़ियाँ और कितने आने-जाने आसमान से गुज़रते है। तो क्या दिन में आसमान का वज़न बढ़ जाता है?"

हम सुबह अपनी खिड़की पर पके चावल के कुछ दाने बिखेर लेते हैं। उससे हमें दिन का पता चलता रहता है। जब चिड़ियाँ आती हैं, तब हमें पता होता है कि हमारी बिल्लियों की नज़र किस पर है। जहाँ दाना, वहाँ चिड़िया। चिड़ियाँ हैं तो बिल्ली भी तो है।

एक दिन मैं अपनी बिल्ली की कारस्तानी देख रही थी। खिड़की का लकड़ी वाला पल्ला खुला था। उसकी जाली के दूसरी तरफ़ दाने फैले थे। एक दाने को लेकर चिड़िया उड़ गई। चिड़िया का वज़न एक दाने भर बढ़ गया होगा। जब वह आसमान में उड़ी तब क्या आसमान का वज़न दाने भर नहीं बढ़ गया होगा?

कुछ दिनों बाद हमारे बिल्ले ने खिड़की पर लगी जाली से किसी तरह सिर बाहर निकाल लिया। वो बाहर बिखरे दाने खाने लगा। मैंने उसे वापिस भीतर खींच लिया। एक दाने को खाकर चिड़िया एक दाने भर बड़ी हो जाती है। एक दाने से उसके भीतर एक दाने भर चिड़िया बन जाती है। हमारे बिल्ले के पकड़ कभी चिड़िया नहीं आई। शायद यह एक दाना खाकर उसने दाने भर चिड़िया को पकड़ लिया। इससे चिड़िया भी उड़ती रही और आसमान पर भी कोई वज़न नहीं पड़ा।





नज़र में धोखा!



आदिल ख़ान
चित्रः एलन शॉ



हमारे मोहल्ले में लुकाछिपी बहुत खेली जाती थी। हम इसे 'आइस पाइस' कहते थे। और इसे खेलते भी बहुत सीरियस तरीक़े से थे। सिर्फ़ शाम या रात को। और ऐसी जगहों पर छुपते कि आसानी से कोई ढूँढ न पाए। जब ढूँढने वाला 'डैन' पास से गुज़रे तो मौक़ा पाते ही छलाँग लगा कर उसके पीठ पर ज़ोर से हाथ मारते और बोलते 'धप्प'! फिर बेचारे डैन को वापस जाना पड़ता और दोबारा गिनती शुरू करनी पड़ती।

छुपने वाले क्या-क्या नहीं करते थे डैन न बनने के लिए। हम आसपास के मैदान तक भी जा सकते थे जहाँ ईंटों के ढेर और तारकोल के ड्रम पड़े रहते थे। नदीम तो एक बार तारकोल के ख़ाली ड्रम के अन्दर घुस गया था। और चुक्की तो एक शाम को बड़े नाले की पुलिया तले छुप गया था। शुक्र है नाले में उन दिनों पानी नहीं था!

ऐसी ही एक शाम को जब मैं डैन था तो मुझे कोई नहीं मिल रहा था। मैं अँधेरे में एक झाड़ी के बराबर देखते-देखते चल रहा था। आगे नीम का एक बड़ा पेड़ था। झाड़ी और पेड़ के बीच तो कोई नहीं छुपा? नहीं, एक गमला था, आगे एक और गमला, और फिर तीसरा गमला। मैं बिना आहट आगे बढ़ा। वैसे मैं अँधेरी रात में भी अच्छे-अच्छों को ढूँढ लेता था। पर उस शाम मैं ज़रा-सा आगे बढ़ा ही था कि ज़ोर से पीठ पे हाथ पड़ा। 'धप्प!' वह तीसरा गमला नहीं था, नदीम छुपा हुआ बैठा था!

कुछ दिन बाद जब मैंने इस शाम के बारे में अपने नाना को बताया तो वो हँस कर बोले, "ओहो! तो तुम्हारी आँखों ने तुम्हें धोखा दे दिया!" यह सुनकर मुझे बड़ा अजीब लगा कि आँखें भी धोखेबाज़ हो सकती हैं। जो चीज़ है नहीं वह हमें दिखा देती हैं। जैसे वो गमला जो वहाँ नहीं था मगर उस रात मुझे दिखा था। कई साल बाद मैंने आँखों के बारे में सीखा। पता चला कि आँखें धोखेबाज़ तो हैं मगर उनकी कुछ धोखाधड़ी हमारी मदद करने के लिए

होती है। मैं बात कर रहा हूँ नज़र के छेद की।

तुम सोच रही होगी नज़र में छेद कहाँ होता है? अगर छेद होता भी, तो सामने कुछ दिखता कैसे? और अगर छोटा-सा भी छेद होता तो हमेशा नज़र का कुछ हिस्सा काला या धुँधला दिखता, चाहे हम जिधर भी देखें। लेकिन यक़ीन करो, तुम्हारी नज़र में छेद है। चलो इस छेद को ढूँढते हैं।

है जहाँ दरअसल तुम्हें कुछ नहीं दिख सकता। इसीलिए जब इन तस्वीरों में चूहा या गोला तुम्हारी आँख के ठीक उस हिस्से पर पड़ता है तो वो ग़ायब हो जाता है। इस को आँख का ब्लाइंड स्पॉट कहते हैं।

लेकिन यह होता क्यों है? तुम्हारी आँखों के अन्दर एक परत है जहाँ रोशनी पहुँचने पर सामने की



9 8 7 6 5 4 3 2 1

अपनी दाईं आँख बन्द करो और इस तस्वीर को देखो। एक तरफ़ चूहा दिखेगा, दूसरी तरफ़ नम्बर।

ऊपर की तस्वीर को अपने चेहरे के थोड़ा पास लाओ, एक-दो बालिश्त दूर, और नम्बर १ को देखो। चूहा अभी भी नज़र के किनारे से दिख रहा होगा।

अब एक-एक करके बाक़ी के नम्बरों को देखो। बीच के नम्बरों तक जब पहुँचोगी तो अचानक चूहा ग़ायब हो जाएगा। और जब आगे बढ़ोगी, तो चूहा फिर दिखने लगेगा! यह क्या अजीब बात हुई?

✚ ●

एक और खेल आज़माते हैं। इस बार बाईं आँख बन्द करो और चित्र में बने + को दाईं आँख से देखो। बराबर का गोला अभी भी एक तरफ़ दिख रहा होगा। अब + से नज़र मत हटाओ और इस तस्वीर को अपने चेहरे के पास लेती आओ। जब यह तुम्हारे चेहरे से क़रीब 6 इंच दूर होगी तो गोला अचानक ग़ायब हो जाएगा!

यह कमाल तुम्हारी नज़र के छेद का नतीजा है! तुम जब भी एक आँख बन्द करती हो तो जो भी दिख रहा है, उसके एक तरफ़ एक छोटा-सा हिस्सा होता

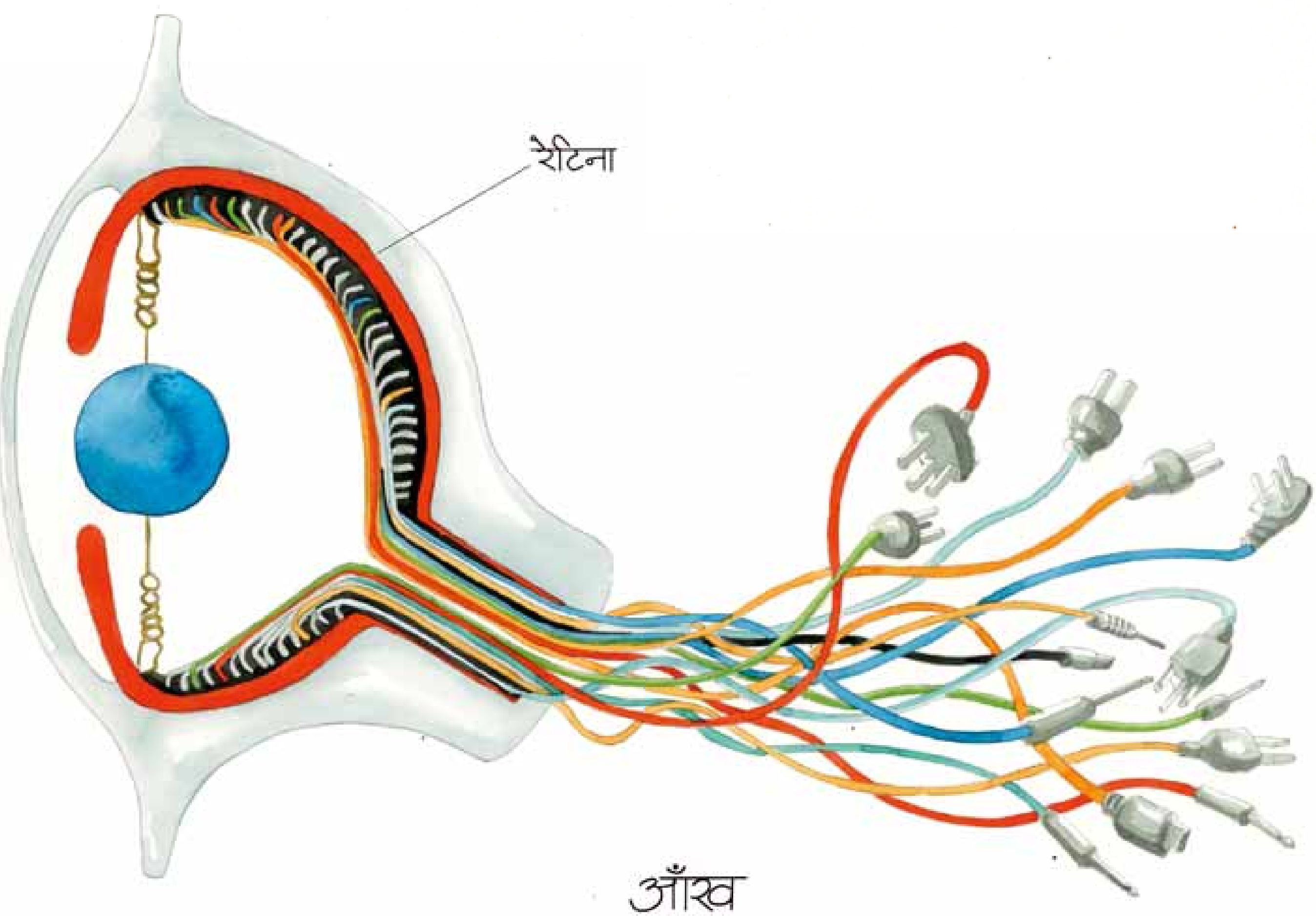
चीज़ों की तस्वीर बनती है। इस परत को रेटिना कहते हैं। रेटिना में कुछ ख़ास सेल्स होते हैं जो आँखों का मैसेज आगे दिमाग़ तक भेजते हैं। वहाँ दिमाग़ के अलग-अलग हिस्से इस मैसेज को समझते हैं और पहचानते हैं कि सामने क्या चीज़ है।

पर रेटिना के सेल्स की एक मुश्किल है। अपना मैसेज दिमाग़ तक भेजने के लिए इन लाखों सेल्स से एक-एक तार निकलता है। लेकिन दिमाग़ तक जाने के लिए इन लाखों तारों का गुच्छा बनना होता है। मुश्किल यह है कि जहाँ तारों का गुच्छा बनता है उस जगह रेटिना की परत में छेद हो जाता है। यही छेद है तुम्हारा ब्लाइंड स्पॉट! शुक्र है यह रेटिना के एक तरफ़ होता है। अगर बीच में होता तो नज़र के बीच की चीज़ें नहीं दिखतीं।

अब सबसे कमाल की बात यह है कि ज़िन्दगी भर हमारा दिमाग़ आँखों के इस ब्लाइंड स्पॉट को हमसे छुपाता रहता है। और हमें पता भी नहीं चलता कि सामने के नज़ारे में एक हिस्सा ग़ायब है। नज़र में ग़ायब हिस्से को छुपाने का तरीक़ा यह है कि दिमाग़ अन्दाज़ा लगाता है कि इस जगह क्या हो सकता है। इस बात को तुम अभी आज़मा के देख सकती हो।



ऊपर एक नीली लकीर है। इसके बीच का हिस्सा ग़ायब है। अब तुम अपनी दाईं आँख बन्द करो और लाल गोले को देखो। लाल गोले को देखते हुए लकीर में एक हिस्सा ग़ायब दिख रहा होगा। अब इस तस्वीर को धीरे-धीरे अपने चेहरे के पास लाओ और लाल गोले को ही देखती रहो। जैसे ही तुम्हारा ब्लाइंड स्पॉट उस ग़ायब हिस्से पे पड़ेगा, तुम्हें नीली लकीर पूरी साबुत दिखने लगेगी! यह इसलिए हुआ कि तुम्हारे दिमाग़ ने अन्दाज़ा लगाया कि लकीर पूरी ही होगी, आँख का ब्लाइंड स्पॉट उस हिस्से को काट रहा होगा। इसलिए जहाँ इस वक़्त ब्लाइंड स्पॉट है, वहाँ नीली लकीर ही मान के चलो। इसे अंग्रेज़ी में





'फ़िलिंग इन' कहते हैं। यानी आसपास के आकारों से अन्दाज़ा लगाना और आँख के ब्लाइण्ड स्पॉट को भर देना।

एक बार तुम अपने ब्लाइंड स्पॉट को पहचान लो तो उसके साथ खुद अलग-अलग खेल आज़मा सकती हो। दाईं आँख बन्द करो। और अपनी नज़र सामने जमाए रखो। फिर अपनी एक उँगली सामने लाओ और थोड़ी बाईं तरफ़ को रखो। उँगली को दाएँ-बाएँ हिलाकर कोशिश करो कि अपने ब्लाइंड स्पॉट से उँगली के ऊपर का हिस्सा काट दो। चाहो तो अलग-अलग रंग और आकर की लकीरें बनाओ जिस में एक हिस्सा ग़ायब हो। और उस में 'फिलिंग इन' करने की कोशिश करो। लेकिन ध्यान रखना, आँखों की इस धोखेबाज़ी के साथ खेलते हुए कोई तुम्हें भी पीछे से आकर धप्प न कर दे!



जामुन का शौक़ीन भूत

फ़रह अज़ीज़
चित्रः एलन शॉ

जब हम छोटे थे, तब अकसर बड़े पापा के घर मुंगेर जाया करते थे। मुंगेर जाने की खलबली इसीलिए ज़्यादा रहती थी कि वहाँ भूत-प्रेत के क़िस्से सुनने को मिलते थे। और रात को छत पर खुले आसमान के नीचे सोने का मौक़ा भी।

उन दिनों मुंगेर में अँधेरा होते ही बिजली चली जाती थी। हम ओढ़ना-बिछौना लेकर छत पर पहुँच जाते थे। खाना खाने का ताम-झाम ख़त्म होने के बाद कहानी-क़िस्से शुरू हो जाते। कोई न कोई बाजी या फ़ूफ़ी भूत का क़िस्सा निकाल देतीं और हम सांस रोके, एक-दूसरे से चिपककर सुनने बैठ जाते थे।

हमारी छत के ठीक सामने एक दूसरे रिश्तेदार का घर था। वो एक अरसे से ख़ाली पड़ा था। उसकी आधी छत को एक बहुत पुराने जामुन की बेइन्तेहाँ घनी डालों ने घेरा हुआ था। पेड़ का तना जंगल झाड़ियों से ऐसा घिरा था कि उसकी जड़ का नज़र आना नामुमकिन था। सब कहते थे कि ये बिना जड़ का जामुन है जो कि ऐसे ही हवा में खड़ा है। बन्दर-लंगूर भी उस पर फूँक-फूँक के जाते थे।

कुल मिलाकर बात ये थी कि उस छत पर भूतों-चुड़ैलों का बेहतरीन डेरा था।

छत पर एक छोटा-सा कमरा भी था। उसपर लगा दरवाज़ा बारिश खा के गल चुका था। दरवाज़े पर ताला पड़ा था लेकिन उसकी फट्टियों की दरारों से कमरे के अन्दर झाँका जा सकता था।

शाम होते ही जब भूत-प्रेत के सारे क़िस्से ख़त्म हो जाते और हम वॉशरूम जाने के ख़्याल को टाल रहे होते तो हमारे कज़िन एहसान भाई शर्तिया मूड में आ जाते। सबसे पूछते कि रात को उस छत पर जाकर कमरे वाले भूत को जामुन कौन खिलाएगा।

भाई दावा करते थे कि भूत को जामुन बहुत पसन्द हैं। उनका कहना था कि जैसे ही कोई उसे हाथ में चार जामुन रख के दरवाज़े की दरार से देता है, वो फट से जामुन ले जाता है। जामुन मीठे होते हैं तो खा लेता है। और अगर कच्चे निकलते हैं तो देने वाले की किसी न किसी उंगली से नाख़ून उखाड़ के ले जाता है।

एहसान भाई की कानी उंगली का नाख़ून उन दिनों ग़ायब था। ये इस बात का सबूत था कि उन्होंने भूत को कच्चे जामुन खिलाए थे। छत पर पड़े जामुन के बीज भी यही बताते थे कि भूत बेशक जामुन खाता है। और कोई तो उस छत पर आता जाता था नहीं।

एक शाम जब बिजली गुल हुई तो भाई ने फिर से भूत को जामुन खिलाने की शर्त रखी। मुझे इस बात पर ज़रा भी यक़ीन नहीं था कि भूत होते भी हैं। भूत का जामुन खाना तो दूर। तो सबके बढ़ाने-चढ़ाने पर मैंने छत पर जाने की शर्त मान ली। लेकिन जैसे-जैसे मैंने छत की सीढ़ियों पर चढ़ना शुरू किया, मेरे दिल की धड़कन बढ़ने लगी।

मैं भूत में यक़ीन नहीं रखती थी लेकिन भूत के डर को नकारना मुश्किल हो रहा था। अपनी हिम्मत और यक़ीन के साख की बात थी। मैंने अपना डर किसी पर ज़ाहिर होने नहीं दिया और चुपचाप आगे बढ़ती गई। ऊपर पहुँच के सांस रोके मैंने दरवाज़े की



फट्टी से झाँका। कमरे में अँधेरा था। कुछ ख़ास नज़र नहीं आ रहा था। रोशनदान से आने वाली चाँदनी ने एक कोने को हलका-सा रोशन किया हुआ था। मैंने देखा कोने में धोती जैसी कोई पोशाक पहने दो बहुत लम्बी और पतली टाँगें खड़ी हैं।

तभी दूसरी छत से एहसान भाई ने चिल्ला के आवाज़ लगाई, "भूत आज भी धोती पहने है क्या? पैर क्रॉस करके तो नहीं खड़ा? कल तो ऐसे ही खड़ा था।"

डर के मारे मेरा कलेजा हलक़ तक पहुँच चुका था। मैं हाँ में सिर हिलाने ही वाली थी। तभी मुझे अन्दाज़ा हुआ कि ये तो मच्छरदानी के डण्डे हैं जिस पर मच्छरदानी लिपटी हुई है। मुझे बड़ी राहत मिली कि सच में भूत-वूत कुछ नहीं होता। मैंने तुरन्त ऐलान कर दिया कि ये भूत फ़र्ज़ी है और मैं शर्त जीत चुकी हूँ।

हालाँकि डर तो अब भी लग रहा था। तो मैं जल्दी-जल्दी छत से नीचे आ गई। शर्त जीतने के लिए इतनी दिलेरी काफ़ी थी। लेकिन एहसान भाई ने मेरी जीत को मानने से इनकार कर दिया।

"शर्त तो भूत को जामुन खिलाने की थी। वो तो तुमने किया नहीं।" ऐसा कह के उन्होंने मुझे वापस भूतिया छत पर भेज दिया।

डर अब तक थोड़ा कम हो चुका था। भूत के न होने के यक़ीन ने मेरी हिम्मत बढ़ा दी थी। मैं वापस छत पर गई, पेड़ से गिरे चार जामुन चुने और बेहिचक अपना हाथ दरवाज़े की दरार से अन्दर कर दिया।

मेरे हाथ का अन्दर जाना था कि कमरे से कुछ उठा-पटक की आवाज़ आई। और एक झटके में मेरे हाथ से जामुन ग़ायब हो गए! मैंने हथेली पर जामुन उठाने वाली उँगलियों तक को महसूस किया।

इसके बाद क्या हुआ, यह बताना ज़रूरी नहीं। बस मुझे भूत के नाख़ून उखाड़ने वाली बात याद थी तो मैं गिरते-पड़ते छत से नीचे भागी।

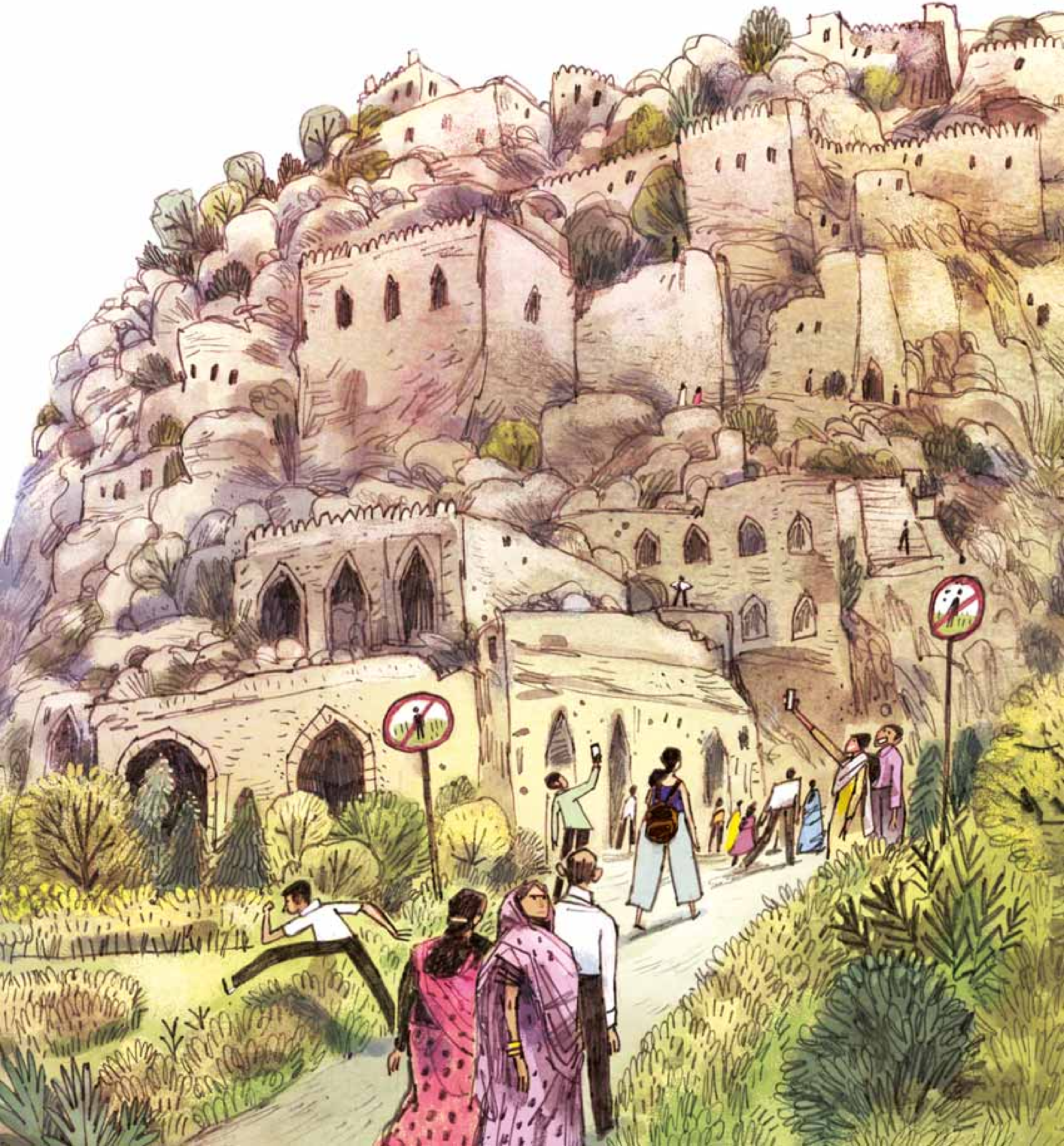
नीचे आकर इस वाक़ये के बारे में मैंने किसी को कुछ नहीं बताया। एहसान भाई और बाक़ी सब से यही कहती रही कि कमरे में जब भूत था ही नहीं तो जामुन भला कैसे खाता?

लेकिन भूत तो अब मेरे दिलो-दिमाग़ में बस चुका था। मैं महीनों इस गुत्थी को सुलझाती रही कि आख़िर उस रात मेरे हाथ से जामुन कैसे ग़ायब हुए?

कुछ सालों बाद मेरे बड़े पापा का इन्तक़ाल हो गया और हमारा मुंगेर जाना बन्द हो गया। कोई 8-10 साल बाद जब मैं किसी बहन की शादी में फिर से एहसान भाई से मिली तो पुरानी बातों के पिटारे खुले और इस वाक़ये का ज़िक्र निकला।

एहसान भाई से पता चला कि उन दिनों उस कमरे में लंगूर के एक जख़्मी बच्चे को बन्द किया गया था ताकि मोहल्ले के कुत्ते उसे नुक़सान न पहुँचाएँ। मेरे रिश्ते के चाचा जानवरों के डॉक्टर थे। वो उस बच्चे का इलाज कर रहे थे। वे ही उस दरवाज़े की दरार से उसे फल और खाना दिया करते थे। लंगूर का बच्चा पंद्रह दिनों तक उस कमरे में रखा गया था। फिर इलाज पूरा होने पर वापस जामुन पर छोड़ दिया गया था।

इतने सालों बाद इस राज़ के खुलने से मुझे दोबारा एक बार राहत मिली कि सच में भूत कुछ नहीं होता। हाँ, लेकिन भूत का डर ज़रूर होता है।





एक टूरिस्ट क़िला बनाने की विधि

मयंक टण्डन

चित्रः राजीव आइप

हैलो फ्रेंड्स, मैं हूँ लकी और लर्न विद लकी के आज के एपिसोड में हम सीखेंगे कि ग्यारह स्टेप्स में कैसे बनाएँ एक पौपूलर टूरिस्ट क़िला।

स्टेप 1: एक ऊँचा-सा पहाड़ या पठार लें। उस पर भारी-भारी पत्थर भिजवाकर, उन पत्थरों से एक इमारत बनवाएँ। पत्थर ऊपर पहुँचाने के लिए क्रेन या लिफ्ट न लगवाएँ। मज़दूरों के पसीने से रियल फ़ील आती है।

स्टेप 2: इमारत के चारों ओर एक गोलाकार नाला बनवाएँ। नाले में पानी न छोड़ें बल्कि ये कहानी छोड़ें कि इस नाले में पानी था और मगरमच्छ पाले जाते थे।

स्टेप 3: इमारत के आसपास एक अच्छा गार्डन बनवाएँ। माली को इतने पैसे दें कि वो गार्डन की घास रोज़ काटे और पेड़-पौधों की छँटाई करके उन्हें बराबर रखे। इस गार्डन में लोगों को जाने न दें।



स्टेप 4: इमारत का कुछ हिस्सा वर्जित रखें। भले ही वहाँ पर कुछ हो न लेकिन इससे सस्पेंस बना रहता है। वहाँ जाने पर भारी जुर्माना लें।

स्टेप 5: क़िले में लोग रानी, दासी और अन्य लेडीज़ वाले महल देखने में ज़्यादा इन्टरेस्ट रखते हैं। वो ज़रूर बनवाएँ। अपने स्वादानुसार इन एरियाज़ में शयनकक्ष, रसोई व स्नानघर रखें। लोगों को ये भी बताएँ कि रानियाँ पर्दे में रहती थीं।

स्टेप 6: जगह-जगह पर पत्थर लगवाकर दो या तीन भाषाओं में क़िले के इतिहास की जानकारी गुदवाएँ। भाषाओं का ट्रान्सलेशन ठीक न भी हो तो चलेगा। ध्यान रखें कि गुदी हुई जानकारी छपी हुई जानकारी से ज़्यादा ऑथेंटिक होती है।

स्टेप 7: राजा-रानी के प्रेम की, विरहा की, भक्ति की, किसी सूफ़ी-सन्त के आने की या किसी राजा के क़ैद होने की कहानी बनाएँ और प्रमोट करें। कहानी के मेन कैरेक्टकर को ऐसी जगह रखें जहाँ से वो अपनी पसन्द की चीज़ जैसे कोई नदी, घोड़ा, पहाड़ या बिल्डिंग देखता हो। उस जगह पर एक दूरबीन रखें। इस कहानी पर एक फ़िल्म भी बनवा लें तो बिज़निस डबल।

स्टेप 8: क़िले में एक-दो तोपें और पुरानी गाड़ियाँ खड़ी करें। दीवार पर तोप से अटैक का निशान बनाएँ। साथ ही सौ मीटर की एक सुरंग भी खोदें। लोगों को बताएँ कि ये सुरंग राजाजी ने बच निकलने के लिए बनाई थी। ये भी कि सुरंग दिल्ली, आगरा या कश्मीर तक जाती है।



स्टेप 9: एक कमरे में काँच के अन्दर तलवारें, बरछे, कुर्ते-पैजामे, प्लेट, चम्मच, कटोरियाँ, ज़ंग लगी बन्दूकें और हाथी-दाँत की बनाई अलायबत्तुर चीज़ें रखें। इन चीजों के नाम व सन सफ़ेद प्लेटों पर गुदवाकर उनके साथ ही रखें।

स्टेप 10: एक लाइट एण्ड साउण्ड शो बनवाएँ जिसका लब्बो-लुआब ये हो कि इस वंश के राजा बड़ी वीरता से लड़े, लेकिन अन्ततः हर चीज़ का अन्त होता है। इस महान साम्राज्य का भी अन्त हो गया। गीता का ज्ञान दें कि जो आया है वो जाना है, क्या तेरा क्या मेरा, वगैरह-वगैरह।

और लास्ट बट नॉट द लीस्ट, टिकट काउन्टर बनवाएँ। भारतीयों को 25 रुपए का और विदेशियों को 350 रुपए का टिकट दें। स्कूली बच्चों के टिकट मुफ़्त रखें। पाँच बजे टिकट काउन्टर बन्द कर दें और साढ़े-छह बजे सीटी बजवाकर लोगों को बाहर निकाल दें।

बस। फिर कम्प्लीट हो जाएगा आपका अपना टूरिस्ट क़िला। इसको आप और ज़्यादा अट्रैक्टिव बना सकते हैं हमारे 101 स्टेप वाले पेड कोर्स के थ्रू। कोर्स का लिंक नीचे डिस्क्रिप्शन बॉक्स में मिल जाएगा।

अगर आपको ये कॉन्टेन्ट पसन्द आया हो तो हमारे चैनल को लाइक करें, शेयर करें, सब्स्क्राइब करें और बैल आइकन दबाना न भूलें।

जय हिन्द।





आठवाँ भाग

कौतुक

मानव कौल

चित्रः राजीव आइप

गाँव में आने के पहले कौतुक अपनी माँ के साथ शहर में रहती थी। उन दिनों माँ अकसर कहती थी कि मेरा जी घबरा रहा है। 'जी घबराना' क्या होता है कौतुक को कभी पता नहीं चला। वो अपने शरीर पर उस वक़्त से 'जी' को खोज रही थी। उसे लगने लगा था कि उसके पास 'जी' नहीं है। तो उसने माँ से पूछा, "माँ, शरीर में जी कहाँ होता है?"

"जी यानी मन। तुम्हें हमेशा चॉकलेट-चॉकलेट की लगी रहती है न, वो इच्छा जहाँ से उठती है वहीं मन होता है।"

कौतुक देर तक मन तलाशती रही। न मिला तो फिर माँ के पास गई, "माँ, शरीर में मन ठीक-ठीक कहा होता है?"

माँ उसे गले लगा कर बोली, "तुम पूरी की पूरी मन हो। ये शरीर मन है। जैसे आत्मा भी पूरा शरीर है।"

"तो जब आप कहती हो कि आपका जी घबरा रहा है तो आप कहना चाहती हो कि आपका शरीर घबरा रहा है?" कौतुक ने पूछा था।

"हाँ, शरीर यहाँ रहना नहीं चाहता है शायद इसीलिए।"

"तो शरीर कहाँ रहना चाहता है?"

"किसी गाँव में।"

"किस गाँव में?"

"जिस गाँव में मैं रहा करती थी जब मैं तुम्हारी उम्र की थी।"

"तो हम वहीं क्यों नहीं रहते? यहाँ क्यों रह रहे हैं?"

उस दिन पहली बार माँ ने तय किया था कि कौतुक सही कह रही है। और वो गाँव आ गए थे।

पुराने क़िले की दीवार से उगे बरगद के पेड़ की छाया में बैठे कौतुक गाँव में आने के बारे में सोच रही थी। उसे वो वाला दिन आज भी वैसा का वैसा याद था।

उसने देखा, नीचे घाट पर कुछ औरतें कपड़े धो रही थीं। उनकी हलकी-हलकी आवाज़ें कौतुक तक पहुँच रही थीं। वो इतनी हलकी थीं कि बताना मुश्किल था कि कौन-सी आवाज़ किस औरत की है। कौतुक सोचने लगी कि इन संगीत-सी आवाज़ों की क्या जात है? इन औरतों का क्या उपनाम है? हर व्यक्ति का उपनाम होना ज़रूरी है? वो माँ के उपनाम के बारे में सोचने लगी। उनका नाम नेत्रा था। नेत्रा के बाद वो कुछ भी नहीं लिखती थीं। उसे तो आज तक यही लगा था उपनाम असल में दो नाम होते हैं और माँ ने सिर्फ़ एक नाम चुना है। क्या वो अपना उपनाम नेत्रा रख सकती थी? कौतुक नेत्रा। उसने माँ से कभी नहीं पूछा कि उनका सरनेम क्यों नहीं है? अगर सरनेम नहीं है तो उन्हें भी क्या स्कूल से निकाल दिया गया था? क्या उनके स्कूल का प्रधान अध्यापक भी जगदीश सर के जैसा खड़ूस था? जो पैदा नहीं प्रकट हुआ-सा लगता था?

तभी हवा का एक तेज़ झोंका आया। और बरगद के पत्तों की आवाज़ों ने कपड़े धोती औरतों की आवाज़ों को ढाँप लिया। कौतुक हैरान थी कि कैसे वो बिना डरे क़िले की दीवार को लाँघकर और खिड़की के रास्ते यहाँ पहुँच गई। डर के बारे में सोचते ही उसे हलका डर लगने लगा। तभी हवा का एक और झोंका आया और क़िले की टूटी दीवार से अचर की आवाज़ आई,

तुम डरो नहीं, वैसे डर कहाँ नहीं है,
पर ख़ास बात डर की कुछ यहाँ नहीं है
बस एक बात है, वह केवल ऐसी है,
कुछ लोग यहाँ थे, अब वे यहाँ नहीं हैं।।

भवानीप्रसाद मिश्र

यह कहते ही अचर क़िले की उस टूटी दीवार से बाहर निकला। कौतुक ने अचर को बस एक बार पलटकर देखा। फिर वापिस नीचे कपड़े धोती औरतों को देखने लगी। अचर अपने काले लबादे में उसके सामने आकर खड़ा हो गया।

"सलमा कहाँ है?" अचर ने पूछा।

कौतुक ने कोई जवाब नहीं दिया तो अचर कौतुक के बगल में आकर बैठ गया।

"सलमा दिखाई नहीं दे रही है।" उसने फिर पूछा।

"मुझे नहीं पता वो कहाँ है।"

"तुमने फिर स्कूल से गुठली मार ली?"

"नहीं, स्कूल में मेरा प्रवेश वर्जित है।"

"बाप रे! इतने भारी शब्द। ऐसा क्या किया तुमने?"

कौतुक चुप रही। अचर ने भी फिर कुछ नहीं पूछा। कुछ देर बाद कौतुक ने पूछा, "तुम्हारा सरनेम क्या है?"

इस वाक्य के अन्त तक आते-आते कौतुक की आवाज़ रुँध गई थी। उसे देखते हुए अचर ने सोचा कि इतनी छोटी-सी बच्ची इस उम्र में कितने बड़े सवालों से जूझ रही है।

"तो स्कूल में प्रवेश वर्जित सरनेम की वजह से हुआ है?" अचर ने पूछा।

कौतुक फिर चुप रही। अचर खड़ा हो गया। कुछ देर टहलने के बाद उसने कौतुक से कहा, "ये जगदीश पगला गया है। उसे लगता है कि सभी लोग एक रंग के होने चाहिए। एक जैसे दिखने वाले। एक ही तरह का सोचने वाले। तुम्हें पता है ऐसे लोगों को क्या कहते हैं?"

कौतुक ने सिर उठाकर अचर को देखा, "क्या कहते हैं?"

"चुगद।"

सुनते ही कौतुक की हँसी छूट गई। कौतुक ने यह शब्द दो-तीन बार दोहराया। हर बार उसकी हँसी छूट जाती।

"तो अब क्या करोगी?" अचर ने कौतुक के बगल में बैठने के बाद पूछा।

"माँ को बोलूँगी। वो फिर जगदीश सर से बात करेंगी।"

"अच्छा, और क्या किया जा सकता है?"

"मैंने तो यह भी सोचा था कि माँ को बताए बिना चोरी से सरनेम रख लूँ। मैं नहीं चाहती कि माँ अपना काम छोड़कर बार-बार मेरी वजह से स्कूल आएँ। वो बहुत थक जाती हैं। फिर उनसे थकने की तेज़ खुशबू आती है।"

"माँ को बताने के अलावा क्या उपाय है? माँ-बाप को सब पता होना चाहिए।"

"मैं यहाँ आपके साथ बैठी हूँ ये बात भी माँ नहीं जानती हैं।"

"तो ये भी बताओ उन्हें।"

"पहले सोच रही हूँ कि चोरी से एक सरनेम रख लूँ।"

"क्या सरनेम रखोगी?"

"दुबे, शर्मा, चौरसिया, कुरैशी, दीवान, इतने सारे तो हैं।"

इस बार अचर को हँसी आ गई। अचर इतना खुल के हँसा कि बरगद पर बैठी सारी चिड़ियाँ उड़ गईं। घाट की औरतों ने बात करना बन्द कर दिया। और डर के मारे क़िले की तरफ़ देखने लगीं। कौतुक आश्चर्य से अचर को देखने लगी।

जारी...

अमरूद

प्रभात
चित्रः बरखा लोहिया



झुण्ड बनाकर तोते आये अमरूदों की डार
सब के सब ऐसे आ बैठे जैसे वन्दनवार
अपने-अपने मन के फिर उनने खाये अमरूद
इसी बीच एक बन्दर आया वहाँ अचानक कूद
सब तोते उड़ गये अकेला खड़ा रहा अमरूद

अमरूदों से कौआ बोला – तुम तो लुट गये यार
तोते आ न पायें यहाँ पर कुछ तो करो विचार
कौए की बातें सुनकर उनसे बोले अमरूद
तोते तो आयेंगे भैया हम जो हैं अमरूद
लुटने जैसी बात कहाँ जो फल देता है यार
तोते उसकी डालों पर तो आयेंगे हर बार



आर. एन. आई. नम्बर - DELHIN/2018/76181 द्विमासिक

एक थे सुन्दर एक थे मुन्दर

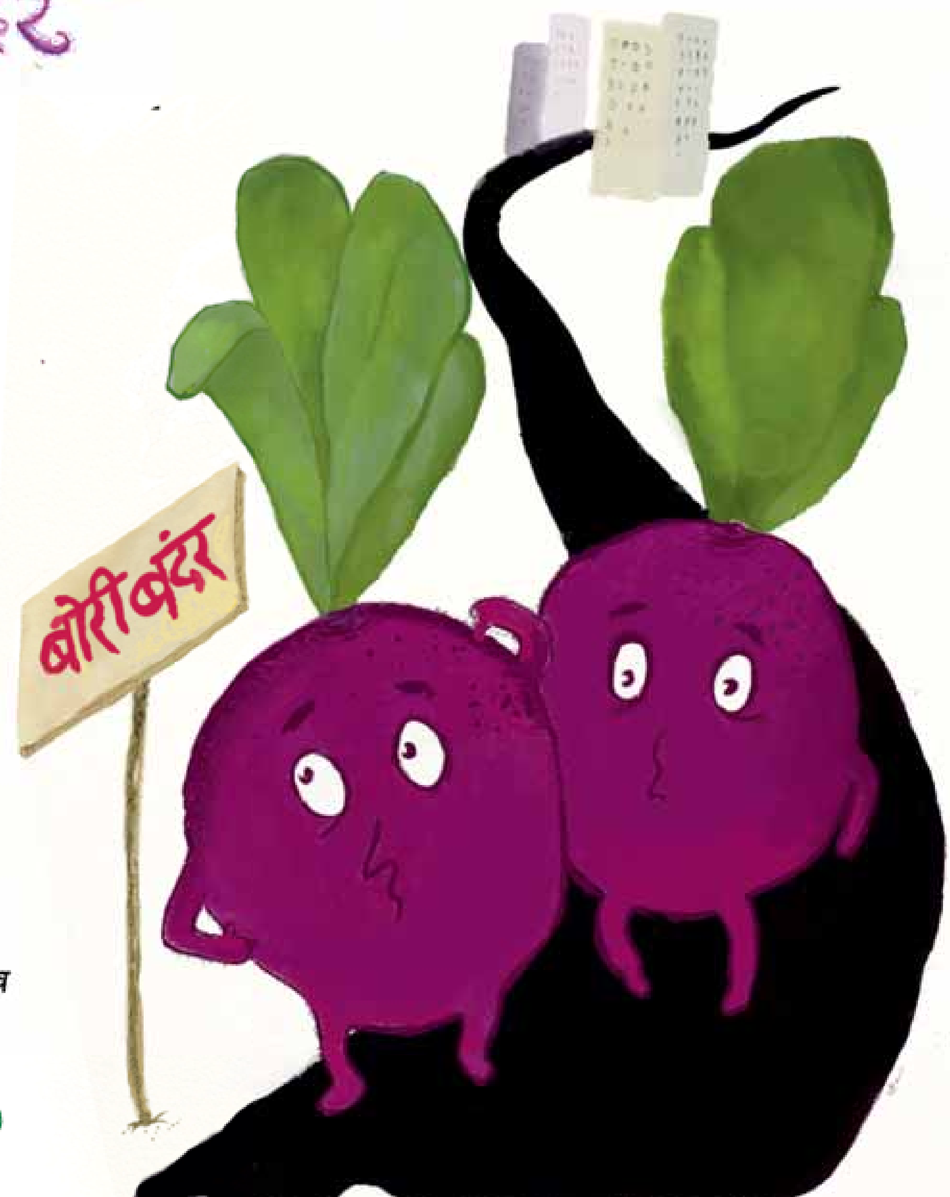
नरेश सक्सेना
चित्रः अतनु राय

एक थे सुन्दर एक थे मुन्दर
मोटे ताज़े लाल चुकन्दर
दोनों अपने को बनते थे
सोच समझ के बड़े धुरन्धर

मुम्बई पहुँच के सबसे पहले
देखे बोरी बन्दर
मुम्बई की लोकल में लटके
आधे बाहर आधे अन्दर

इसी तरह लटके लटके ही
पहुँच गए वो बोरी बन्दर
बहुत निराश हुए जब देखा
ना थी बोरी ना था बन्दर

लेकिन खुश हो गए बहुत जब
देखा पहली बार समुन्दर
जब तक थे मुम्बई में दोनों
गए घूमने रोज़ समुन्दर



मुद्रक तथा प्रकाशक संजीव कुमार द्वारा
इकतारा ट्रस्ट के लिए मल्टी कलर सर्विसेज़
शेड नं. 92, डी.एस.आई.डी.सी., ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज़ 1,
नई दिल्ली 110020 से मुद्रित एवं सी-404, बेसमेंट, डिफेंस कॉलोनी,
नई दिल्ली 110024 से प्रकाशित
सम्पादक - सुशील शुक्ल

Price : ₹150.00
ST 0000408